वर्ष ४

ओ३म्

भक्ति

ओ३म्

संख्या २

कार्तिक सम्वत् १९८६

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

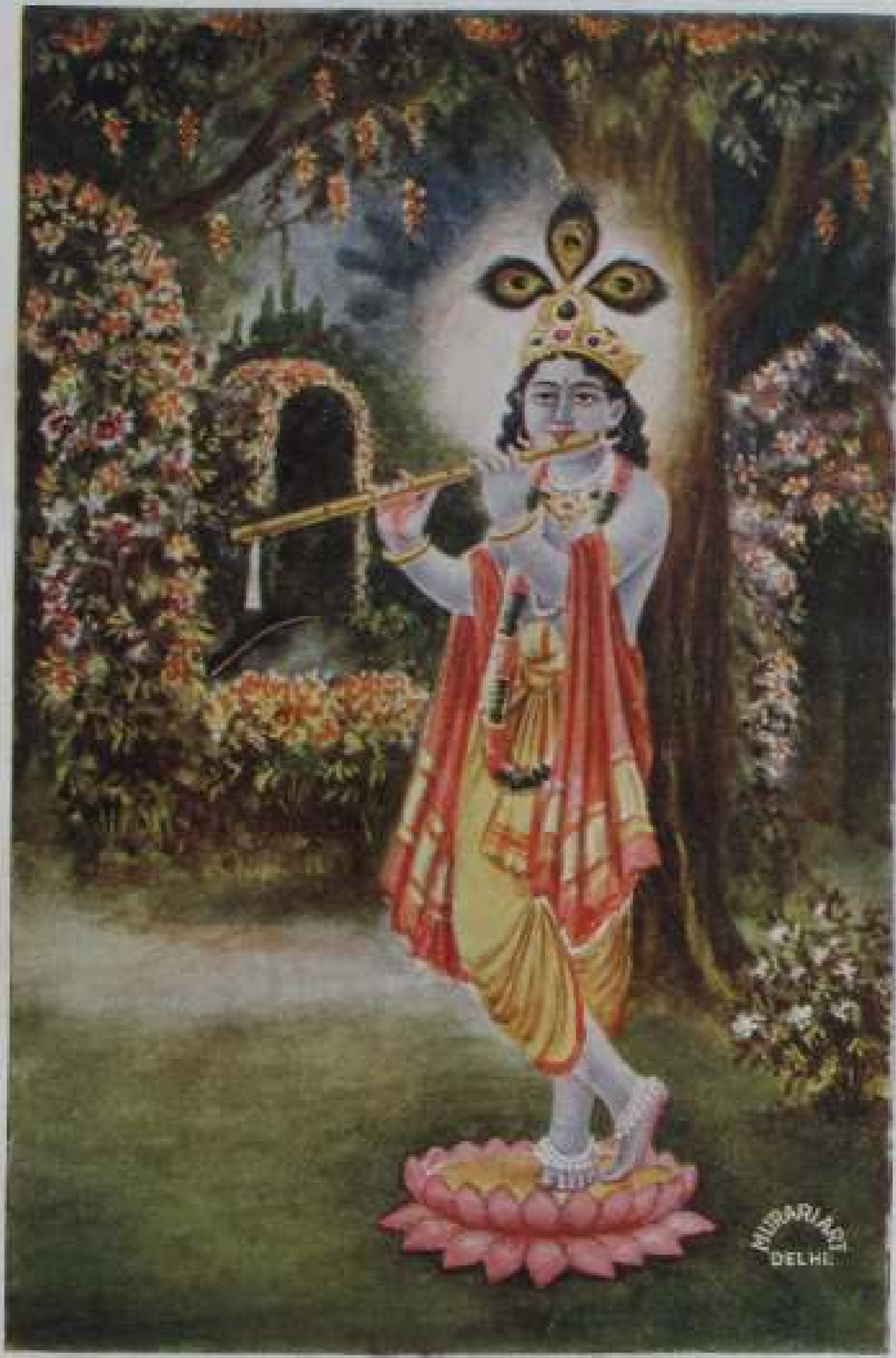

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणम् व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

इस अङ्क का मूल्य ।)

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्रव्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९ पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची

विषय लेखक पृष्ठ

१. वेदोपदेश १२९
२. हरि नाम प्रेमी यवन हरिदास जी १३१
३. प्राण-धार (कविता) [लि० श्रीहनुमान प्रसाद शर्मा "सैनिक" १३७
४. भगवद्भक्ति [लि० श्री स्वामी भोले बाबाजी १३८
५. उपालंभ (कविता) [लि० पं० मोहन जी शर्मा 'विशारद' १४५
६ श्री राम नाम माहात्म्य [लि० श्री गंगानाथ जी उपाध्याय १४६

विषय लेखक पृष्ठ

७. प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा [लि० श्रीस्वामी आत्मानन्द जी १४७
८. भक्ति स्वरूप वर्णन [लि० श्रीमधुमंगल जी मिश्र बी. ए. १५१
९. कृष्ण (कविता) [लि० श्री पं० गंगाविष्णु पाण्डेय विद्याभूषण १५५
१०. महात्मा सच्चिदानन्द का उपदेश [लि० भक्तराज श्रीमथुरा प्रसाद जी १५६
११. एक देवी द्वारा सेठजी को ज्ञान (गद्य) १५८

भक्ति के संरक्षक

भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१११)
लेफ्टेनेन्ट सरदार रघुबीरसिंह जी सांधेवालिया राजा सांसी, अमृतसर	१११)
पं० जैनारायण जी भार्गव भोड़ाकलां, गुड़गावां	११०)
धर्मसीह मावजी जेठवा कोलरांप्रोप्राइटर झरिया	१०१)
ला० नूनकरणदास जी अग्रवाल भिवानी।	१०१
आनरेबिल सरदार जुगेन्द्रसिंह जी मिनिस्टर आफ ऐग्रीकलचर लाहौर	”
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा	५१)
सेठ अर्जुनदास जी भटिण्डा	५१)
ला० जोहरी मलजी रेवाड़ी	५१)
सेठ उमरावसिंह जी डालमियां चिड़ावा	५१)
मुक्खी चण्डूमल बलीराम जी भटिण्डा	५१)
सर आपा राव सातोले साहिब सी० एस० ई० के० बी० ई० रेवेन्य मेम्बर गवालियर	५१)
प्रो० बाबूलाल जी भार्गव एम. ए. दिल्ली	४२)
राव श्रीराम जी रईस नांगल	२५)
म० शोभाराम जी डूंगरवास	”
बाई लक्ष्मादेवी भगनी राव जगमालसिंह जी रईस नांगल	”
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	”
सेठ बनवारी लाल जी लोहिया चावड़ी बाजार दिल्ली	”
ठाकुर उमरावसिंह जी रईस नान्धा	”
ला० दुर्गाप्रसाद जी भार्गव कुतबपुर	”
राय बहादुर सरदार शोभासिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट नई दिल्ली	”
बाई बदामो देवी पुत्री ला० गनेशीलाल चर्खीदादरी	”
श्रीमती भक्तार्णादेवी धर्मपत्नी भक्त नन्दकिशोर जी चर्खीदादरी	”
श्रीमती गोदावरीदेवी भगनी ला० प्रभुदयाल जी ”	”
श्री० गणपतिदेवी धर्मपत्नी ला० गंगाप्रसाद जी दादरीवाले, साहबगंज	२५)
राव गजराजसिंह जी बी० ए० एल० एल० बी० गुड़गावा	२५)
सेठ नागरमल जी सेखसरिया आनरेरी मजिस्ट्रेट मियनाबाद	२५)
प्रेमसुख हीरालाल जनरल ठेकेदार रेवाड़ी	२५)
ऐस० जे० राव पंवार होम मेम्बर गवालियर स्टेट ”	२५)
राय बहादुर सरदार बसाखासिंह जी नई दिल्ली	२५)
पी० एन० कोल बैरिस्टर दिवान भूतपूर्व देवास स्टेट लाहौर	२५)
चौ० जीवनदास जी आनरेरी मजिस्ट्रेट मंझ	२५)
सूबेदार जगरामसिंह जी कांसली	२५)

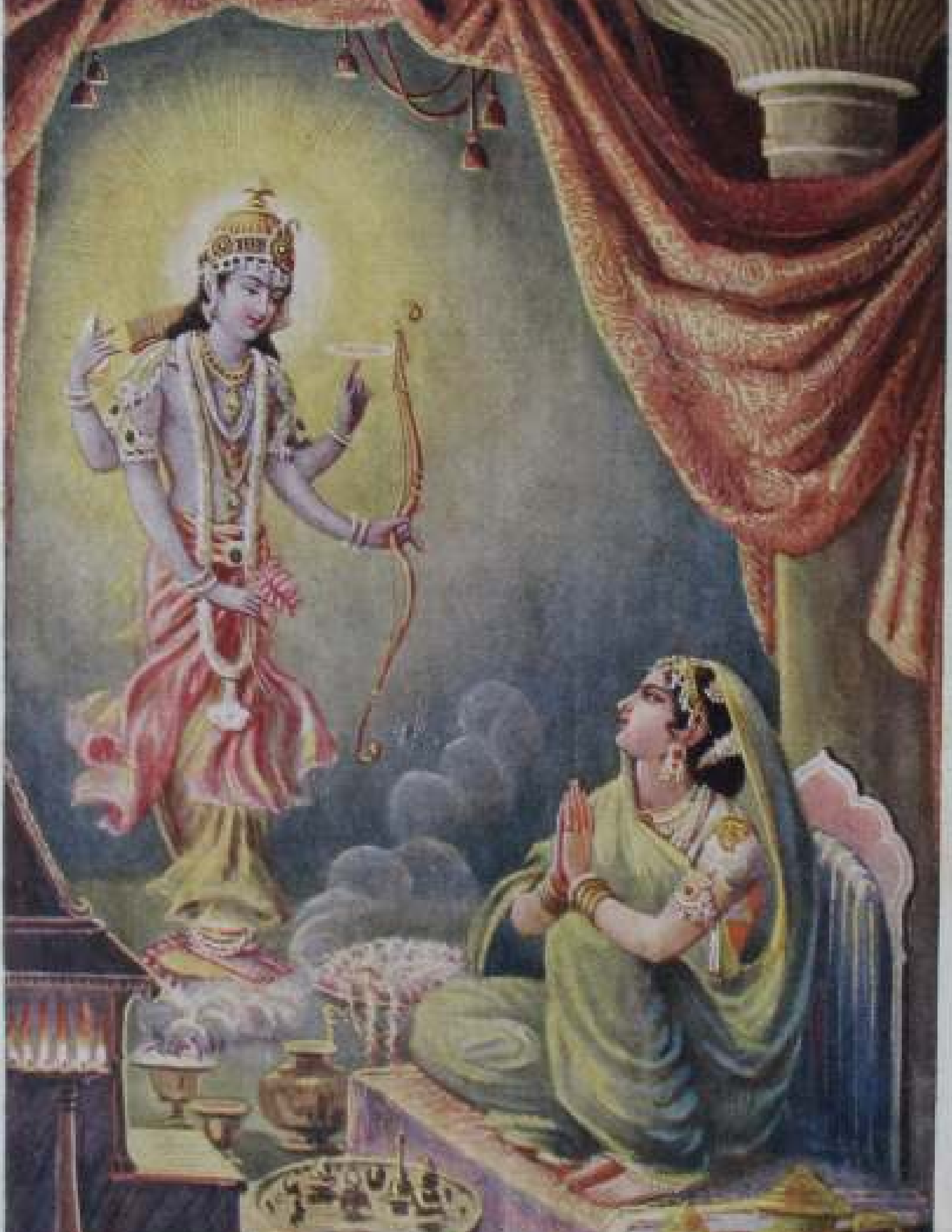

कौशल्या नारायण

महारथी प्रेस, दिल्ली

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका ।

वर्ष ४ } भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, कार्तिक पूर्णिमा सं० १९८६ । { अङ्क २

वेदोपदेश

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥१॥

जो विद्यादि से युक्त परमेश्वर हम स्तोताओं के लिये अनेक प्रकार से शिक्षा देता है उस विद्यादि से युक्त परमात्मा को जिस प्रकार जानता हूं उस प्रकार अत्यन्त पूजता हूं ॥ १ ॥

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्र गीर्भिर्नवामहे ॥२॥

हे उपासको ! कामादि शत्रुओं का तिरस्कार तथा क्षय करने वाले, दुःख को दूर करने वाले, सोम रूप अन्न के पीने से प्रसन्न होते हुये तुम्हारे पूजने योग्य इन्द्र को गोशालाओं में गौवें जैसे बछड़ों को देख कर शब्द करती हैं ऐसे वाणी से प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥

तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्र सबाध ऊतये ।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥३॥

हे मनुष्यो ! मैं तुमको पुकार कर कहता हूं कि ऋत्विज लोग जिसमें सोम खींचा जावे उस सोम यज्ञ में यज्ञ रक्षार्थ बृहत् नामक साम को ऊंचे स्वर से गाते हुवे धन को लाभ कराने वाले परमेश्वर की स्तुति करें जैसे हितकारी कुटुम्ब के पोषक पित्रादि को पुकारते हैं ॥ ३ ॥

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधेऽस्माꣳ अवन्तु ते धियः ॥४॥

हे इन्द्र ! रस वाले गौके दूध घृतादि से युक्त हमारे सम्पादन किये हुवे सोम को पिवो और पीकर प्रसन्न होवो और देवताओं के प्रसन्न होने वाले यज्ञ में बान्धव बनते हुवे हमारी वृद्धि के निमित्त सावधान हूजिये । तुम्हारे अनुग्रह करने वाले विचार हम सेवकों की रक्षा करें ॥ ४ ॥

मा चिदन्यद्वि शꣳसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणꣳ सचा सुते मुहुरुक्था च शꣳसत ॥५॥

हे मित्रो ! और किसी को स्तुति मत करो किन्तु मन शुद्ध करने पर धर्मार्थ काम के पूर्ण करने वाले परमात्मा ही की सब मिल कर स्तुति करो और स्तोत्रों को बारम्बार पढो तथा हिंसा मत करो ॥ ५ ॥

त्वमङ्ग प्रशꣳसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥६॥

प्यारे पुरुष ! तू इस प्रकार प्रशंसा कर कि हे अनन्तधन ! परमेश्वर ! आप से भिन्न कोई मनुष्य का सुखदायी नहीं है । हे अनन्त बलवान् ! आपके लिये स्तुति वचन उच्चारण करता हूं ॥ ६ ॥

इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रꣳ समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ७ ॥

हम यज्ञ के लिये परमेश्वर की ही पुकार करें, यज्ञ आरंभ होने पर परमेश्वर की पुकार करें यज्ञ समाप्ति वा युद्ध में भी परमात्मा की सहायता मांगे , संविभाग करते हुवे हम धन के दान मिलने के लिये परमेश्वर की सहायता मांगे ॥ ७ ॥

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्द्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ ८ ॥

हे बहुधन परमेश्वर ! जो मेरी वाणी आपके प्रति होवे वृद्धि को प्राप्त हों, और जो अग्नि सम तेजस्वी पवित्र विद्वान् स्तोता गीयमान स्तोत्रों से सब प्रकार स्तुति करते हैं वे भी वृद्धि को प्राप्त हों ॥ ८ ॥

शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ ९ ॥

हे अनन्त पराक्रमी ! कर्मों और बुद्धियों के अध्यक्ष ! कर्म फल दाता परमेश्वर ! समस्त रक्षाओं सहित ऐश्वर्य के समान कीर्ति भले प्रकार दीजिये यह याचना है । और निश्चय विद्यादि धनके दाता आपके अनुकूल चलें यह कृपा कीजिये ॥ ९ ॥

प्र मित्राय प्रार्य्यम्णे सचथ्यमृता वसो ।
वरूथ्ये३ वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रꣳ राजसु गायत ॥ १० ॥

हे यज्ञ धन यजमान ! मित्र देवता के लिये सेवन योग्य गुण कीर्तन रूप वैदिक वचन को गावो और अर्यम्ण के लिये गावो तथा हितकारी वरुण के लिये गावो । इस प्रकार मित्र, अर्यम्ण और वरुण इनके लिए कीर्तन करो ॥ १० ॥

अभित्त्वा पूर्व पीतय इन्द्र स्तोमे भिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ ११ ॥

हे परमेश्वर ! मेधावी स्तोता भले मनुष्य अपनी पूर्व तृप्ति के लिये स्तोत्रों से सनातन आपको सर्वथा वर्णन करते और गान करते हैं । इस प्रकार हम भी आपका स्मरण, कीर्त्तन और गान करते हैं ॥ ११ ॥

हरि नाम प्रेमी यवन हरिदास जी

श्री गौरांग महाप्रभु के भक्तों में से एक हरिदास जी नाम के परम भक्त थे । इनका घर बूढ़न ग्राम में था । ये ब्राह्मण कुमार होने पर भी पितृ मातृ हीन होने के कारण यवनों द्वारा प्रतिपालित होने से यवन ही गिने जाने लगे थे । किन्तु हरिदास जी परम साधु हुये हैं । उनका भजन था केवल हरिनाम जप ! प्रायः रात दिन उच्च स्वर से हरि नाम जप किया करते । हरिनाम में उनकी जैसी भक्ति थी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । उनका ध्रुव विश्वास था कि कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार हरिनाम जप करने से संसार से तर सकता है । नाम जप से ही नहीं केवल नाम श्रवण मात्र से जीव मात्र परम गति लाभ कर सकता है चाहे वह मनुष्य हो या अन्य प्राणी । इसलिये वे उच्च स्वर से नाम जप किया करते । वे बेनापोल के जंगल में (बनग्राम के पास के रेलवे स्टेशन के पास) कुटी बना कर रहा करते थे । उन का कठोर भजन देख वहां के दुष्ट जमींदार के हृदय में उनकी परीक्षा लेने की इच्छा

उत्पन्न हुई। इसीलिये उनके निकट वेश्या को भेजा। वेश्या हरिदास जी के निकट आई और लगातार हरिनाम ध्वनि सुनने से उसका मन निर्मल होगया। उसी समय वह हरिदास जी के चरणों में गिर पड़ी। हरिदास जी उस वेश्या को नाम जप का उपदेश दे उस कुटिया में टिका स्वयं उस दुष्ट जमींदार का अधिकार छोड़ अन्यत्र चले गये।

इधर मुसलमान काजी व मुल्कपति के कानों में यह बात पहुंची कि हरिदास मुसलमान धर्म छोड़ हिन्दू होगये। यह सुन कर काजी हरिदास जी को पकड़ लेगया। हरिदास जी ने मुल्कपति का मन तो द्रवीभूत कर दिया किन्तु उसका मंत्री गौटाई काजी वज्र सम कठिन हृदय का था। इस काजी ने यह कह कर मुल्कपति के कान भर दिये कि यदि आप हरिदास को दंड न देंगे तो इसमें मुसलमानों का बड़ा अपमान होगा। इस पर मुल्कपति ने बाध्य होकर हरिदास जी को दंड देना स्वीकार किया। दंड आज्ञा हुई 'प्राणवध' सो भी किस तरह, कि बाइस बाजारों में बेत मारते मारते घुमा कर प्राण वध। यह दंड इतना कठोर है कि दो तीन बाजारों में बेत मारते मारते घुमाने से ही प्राण निकल जाया करते हैं।

तब गौटाई काजी हरिदास जी से बोला कि यदि तुम अब भी कमला पढ़ हरिनाम छोड़ दो तो भी सम्मान सहित राज दरबार में रक्खे जा सकते हो। इस पर हरिदास जी ने साभिमान उत्तर दिया।

खंड खंड हय यदि जाय देह प्राण।
तबू आमि बदने ना छाड़िबो हरिनाम॥

(चैतन्य भागवत)

अब हरिदास को बेंत मारते मारते बाजारों के बीच से ले चले और वे मुंह से हरिनाम उच्चारण करने लगे। हरिदास के अंग पर सड़ा सड़ बेंत गिर रहे हैं परन्तु उन्हें इससे जरा भी कष्ट नहीं हो रहा है। उन्हें तो उस समय भी हरिनाम बड़ा प्रिय लगता है। इस अवतार में भगवान् ने पृथक् पृथक भक्त द्वारा भजन के पृथक् २ अंगों का माहात्म्य दिखाया है। जप माहात्म्य हरिदास जी द्वारा दिखलाया गया है। इसी हरिनाम के निमित्त वे बेंत खा रहे हैं और उनके आनन्द का पारावार नहीं है। इसीलिये बेंत के आघात से उन्हें कष्ट नहीं हो रहा है। हम लोगों को स्त्री पुत्र की रक्षा करने में बेंत की चोट नहीं मालूम होती लेकिन हरिदासजी को तो हरिनाम स्त्री पुत्र की अपेक्षा न जाने कितना अधिक प्रिय है। विशेष करके हरिदास जी की जो स्थिति है उसमें यदि उन्हें वेदना हो तो फिर लोग हरिनाम किस प्रकार भजेंगे? अनेकों ने भगवान् के नाम पर प्राण दिये हैं किन्तु वास्तव में उन्होंने वैसा भगवान् के लिये नहीं किया। भगवान् के लिए प्राण दिया नहीं जा सकता कारण प्राण देने को तत्पर होते ही वे उस भक्त की उसी क्षण रक्षा करते हैं, जिन्होंने भगवान् के नाम पर प्राण दिये हैं, वास्तव में उन्होंने वैसा दम्भ या अहंकार से किया है।

हरिदासजी विचार करते हैं-"क्या ये महापापी हैं? मैंने तो इनका कोई अपराध नहीं किया। तब फिर ये मुझे इतनी निर्दयता से क्यों प्रहार कर रहे हैं? इनके लिये क्या उपाय होगा"?

'इनके लिये क्या उपाय होगा' विचार करते ही हरिदास जी द्रवीभूत होगये और चुप नहीं

रह सके। उन बेतापात करने वालों की मंगल कामना करते हुये हरिदास जी श्रीहरि से इस प्रकार उच्च स्वर से प्रार्थना करने लगे, "प्रभो, मुझे मार कर ये कुकर्म कर रहे हैं। इस कुकर्म से इनकी दुर्गति होने की संभावना है। प्रभो! इनकी दुर्गति का कारण मैं ही हुआ। क्या आपके भजन का यह फल है? अब तो कृपा करके अपने इन निर्बोध जीवों को भय से रक्षा कीजिये"।

इस प्रकार की अद्भुत प्रार्थना सुन कर जो वहां उपस्थित थे एवं जो उन्हें प्रहार कर रहे थे, सभी स्तम्भित होगये। और हरिदास जी भगवान् की कृपा से परमानन्द में अचेतन हो गिर पड़े। मुसलमानगण उन्हें मृत समझ गंगा में फेंक चले गये। कुछ देर उपरान्त हरिदास जी चेतन लाभ कर किनारे निकल आये। इसके बाद श्रीअद्वैताचार्य का संग पा उनके चरणों में गिर वहीं रहने लगे। पीछे निमाई की कथा सुन उनके दर्शनार्थ हरिदासजी नवद्वीप आये। भुवन विख्यात हरिदास जी का नाम सब ने ही सुन रखा था, उनको आया देख भक्तगण उन्हें निमाई के निकट ले गये। उन्हें देख निमाई ने बड़े आदर से उन्हें बैठने को आसन दिया। यद्यपि उस समय तक हरिदास जी ने सम्पूर्ण रूप से निमाई को आत्मसमर्पण नहीं किया था तब भी आसन पर किसी प्रकार भी नहीं बैठे बल्कि उसे मस्तक पर धारण किया। फिर निमाई ने उन्हें अच्छी तरह से भोजन कराया। भोजनोपरान्त अपने हाथ से उनके अंग में चंदन व गले में फूल माला चढ़ाई। उसी समय हरिदास जी ने निमाई के चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया।

चैतन्यदेव की आज्ञा से हरिदास जी ने श्री नित्यानंद जी के साथ कीर्तन और नृत्य करते हुये ग्रामों में घूम घूम कर नर नारियों को हरिनाम वितरण कर पावन किया था।

महाप्रभु संन्यास लेनेके बाद दक्षिण यात्रा में भ्रमण करके जब नीलाचल पहुंचे उस समय हरिदास जी भी प्रभु के दर्शनार्थ पुरी आये और दूर से ही दर्शन कर राजपथ में पड़े रहे। मंदिर के नजदीक जाने का उनको साहस नहीं हुआ। इतनी दूर आये सो भी प्रभु के साहस से। मंदिर के निकट पहुंचे तो विचारने लगे कि मेरे ऐसे अपवित्र व्यक्ति का ऐसे पवित्र स्थान में जाना उचित नहीं। इसीसे दूर से ही प्रभु के दर्शन कर रह गये। श्रीप्रभु के भक्तों में प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी विशेष भावके आदर्श थे उनमें से हरिदास जी दीनता की तो मानो खान ही थे।

तब हरिदास जी को लेने के लिये कितने ही भक्त फिर आये किन्तु हरिदासजी भीतर जाने को सम्मत न हुये। उन्होंने विचारा कि प्रभु ने जो उदारता दिखाई सो तो उचित ही है लेकिन मेरे जैसे नीच व्यक्ति का मंदिर के निकट जाना उचित नहीं है।

प्रभु को यह संवाद सुनाया गया। सुन कर वे बड़े आनन्दित हुये। दैन्य देख कर प्रभु सर्वदा ही आनन्द से भर उठते और कहा करते कि जो तृण की अपेक्षा भी नीच हो सकता है वही श्रीकृष्ण कीर्तन के योग्य होता है।

तब प्रभु भक्तों को स्नान आदि से निवृत्त होने के लिये विदा कर स्वयं हरिदास जी को लेने आये और घर से बहुत दूर जाकर हरिदास जी को रास्ते में नाम कीर्तन करते हुये बैठे पाया। हरिदास जी ने उठ कर चरणों में दंडवत की और प्रभु को

आलिंगन करते देख हाथ जोड़ कर पीछे हटने लगे। हरिदास जी बोले, "प्रभो! मैं अस्पृश्य पामर हूं आपके स्पर्श योग्य नहीं हूं अतएव मुझे स्पर्श न करिये'।

हरिदास जी प्रति दिन तीन लक्ष नाम जप किया करते इसी को लक्ष्य कर प्रभु गद्गद होकर बोले, "मैं पवित्र होने के लिये तुम्हें स्पर्श करने की इच्छा करता हूं।

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्,
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या,
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥

तब प्रभु ने हरिदास जी को हृदय से लगा लिया। प्रभु व भक्त दोनों आनन्द से रोदन करने लगे। प्रभु उनको लेजा कर अपने स्थान के निकट ही में'काशीमिश्रकी जगह में पुष्पोद्यान के बीच की कुटिया में ठहराया प्रभु बोले, "यही तुम्हारा घर है यहीं रहकर नाम कीर्तन किया करो। मैं रोज तुम से मिलने आया करूंगा और प्रति दिन तुम्हारे लिये यहां महा प्रसाद आ जाया करेगा।

प्रभु के आदेश से हरिदास जी ने वहीं रह कर कीर्तन का आनन्द लूटते हुये अपना शेष जीवन बिताया। हरिदास जी अति वृद्ध हो गये किन्तु अब भी उनका साधन का आग्रह कम नहीं हुआ। प्रतिदिन तीन लाख नाम उच्च स्वर से जप करते। प्रभु प्रतिदिन समुद्र स्नान कर हरिदास जी से मिलने आया करते और गोविन्द नित्य प्रति प्रसाद दे जाया करता।

एक दिन गोविंद ने देखा कि हरिदास जी शयन किये हुये मंद स्वर से नाम जप रहे हैं। वह आकर बोला, "उठिये प्रसाद ग्रहण कीजिये। हरिदास जी उठ कर बोले आज मैं उपवास करूंगा कारण अभी मेरी नाम जप की संख्या पूरी नहीं हुई। किन्तु फिर बोले कि महाप्रसाद की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये क्या करूं यही विचार रहा हूं। यह कह कर महाप्रसाद को वंदन कर कुछ पालिया। दूसरे दिन हरिदास जी की ऐसी अवस्था सुन कर महाप्रभु उनके पास आये। उन्हें देख हरिदास ने साष्टांग प्रणाम किया। प्रभु के पूछने पर हरिदास जी बोले कि शारीरिक कष्ट तो कुछ नहीं है परन्तु मन अस्वस्थ है पूरी संख्या में नाम जप नहीं कर सकता। इस पर प्रभु बोले, "तुम वृद्ध हो गये हो अब साधन में इतना आग्रह मत रखो नाम जप की संख्या कम कर दो। नाम माहात्म्य का प्रकाश करने को ही तुम जगत् में आये सो जीवगण अच्छी तरह जान गये। अब तुम ऐसे करके शरीर को व्यर्थ कष्ट मत दो"।

तब हरिदास जी अति कातर हो हाथ जोड़ कर बोले, "प्रभु! ये सब बातें जाने दीजिये मुझे एक वर देना होगा। विदित होता है अब आप अवश्य लीला संवरण करेंगे। मेरी यही प्रार्थना है कि यह आप मुझे न देखने देना। जिससे मैं इस संसार से शीघ्र चला जाऊं ऐसा उपाय कीजिये। प्रभो! आपको सोगंद है मुझे विदा कर दीजिये।

ये सब वचन सुन कर प्रभु समझे कि हरिदास अपने मन की गुप्त बात प्रकाश कर रहे हैं। प्रभु की आंखें पानी से डब डबा आईं और बोले, "हरिदास! यह क्या कहते हो? क्या तुम मुझे छोड़ जावोगे तब मैं यहां किसको देखकर रहूंगा? तुम निर्दय होकर मुझे अपने सुख से वंचित करना

क्यों चाहते हो ? तुम्हारे सिवाय मेरा और है ही कौन ?"

इस पर हरिदास जी बोले, " प्रभो ! इन सब बातों में मुझे भुला मत देना। कितने ही महान व्यक्ति तुम्हारी लीला में सहायक हैं। मेरे जैसे क्षुद्र कीट के मरने से आपके अभाव हो जायगा ऐसा आप क्यों कहते हैं। प्रभो ! मुझे छोड़ दीजिये, मैं चला जाऊं !" ऐसे कह कर हरिदास रोते हुये एक दम प्रभु के चरणों में लिपट गये और फिर बोले, "मेरी इच्छा की बात सुनिये । मैं जाऊंगा, किन्तु आपके श्रीपादपद्म हृदय में रख कर, और आपके चन्द्र वंदन का दर्शन करते हुये, आपका नामोच्चारण करते करते। कहिये प्रभो ! क्या मुझे यह वर देंगे ?"

जिस प्रकार अस्त मेघ में पूर्ण चन्द्र प्रकाश करता है उसी तरह प्रभु का चन्द्रवदन दुःख से मलिन होगया। प्रभु कुछ भी उत्तर नहीं देसके अनेक क्षण अवनत मस्तक हो चुप चाप खड़े रहे। फिर धीरे धीरे बोले, "तुम जो इच्छा करते हो वह श्रीकृष्ण पूर्ण करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है। किन्तु तुम्हारे बिना मैं कितने कष्ट में रहूंगा यही विचार रहाहूं। ऐसे कह कर प्रभु खिन्न चित्त से उठ कर चले गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल प्रभु अपने साथियों सहित हरिदास जी की कुटी पर आउपस्थित हुये, तब हरिदास जी पूछने लगे, प्रभो ! क्या खबर है ? इस पर वे बोले, "जैसी आपकी आज्ञा हो वैसा ही हो"! हरिदास जी समझ गये कि प्रभु ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करली। ऐसे कहते कहते कुटी से बाहर आंगन में आ प्रभु व भक्त गणों के चरणों में हरिदास जी ने प्रणाम किया। हरिदास जी इतने दुर्बल होगये कि खड़े भी नहीं रह सकते थे। तब प्रभुने उन्हें यत्न पूर्वक आंगन में बैठाया और सब मिल कर उन्हें घेर नृत्य करते हुये हरिनाम संकीर्तन करने लगे।

हरिदास मध्य स्थल में क्यों बैठे हैं ? मरने के निमित्त ! भक्तगण नृत्य करते हुये विचार रहे हैं और हरिदास जी उनकी पद रज ले सर्वांग में लगा रहे हैं। इस प्रकार हरिदास जी भक्तों की पद धूली धूसरित हो गये। स्वरूप और वक्रेश्वर नृत्य कर रहे हैं और स्वयं प्रभु, स्वरूप, रामराय, व सार्वभौम इत्यादि गाते हैं। फिर प्रभु कीर्तन बंद कर भक्तगणों को संबोधन कर हरिदास जी के गुण वर्णन करने लगे। आज प्रभु स्वयं वक्ता है हरिदास के गुण वक्तव्य और भक्तगण श्रोता हैं। हरिदासजी के गुण श्रवण करते करते भक्तगण विह्वल हो हरिदासजी के चरणों में प्रणाम करने लगे।

तब हरिदास जी धीरे धीरे सोगये। मस्तक व सर्वांग पद धूली से भूषित हैं। मुख से कह रहे हैं, "प्रभो ! दयामय ! श्रीगौराङ्ग ! इस दीन को भी चरणों में स्थान दो"। फिर प्रभु को अपने निकट बैठाने की इच्छा प्रकाशित की। प्रभु बैठ गये और हरिदास जी ने उनके चरण पकड़ अपने हृदय पर स्थापित कर लिये। प्रभु कुछ भी नहीं बोल सके कारण उन्होंने ही तो हरिदास जी को वर दिया है। इसके बाद हरिदास जी अपने दोनों नयन प्रभु के मुखचन्द्र की ओर लगा सुधापान करने लगे। इससे उनके दोनों नयनों से प्रेम धारा बहने लगी। तब हरिदास जी प्रभु का नाम उच्चारण करने लगे। यथा:-

'नामेर सहित प्राण करिल उत्क्रामण'

हरिदास जी दो दिन पहिले कुछ अस्वस्थ हुये थे सो भी कुछ ज्यादा नहीं। दूसरे दिन प्रभु के पास वर याचना की और तीसरे दिन कुटी के बाहर आंगन में आ बैठे, शयन किया और चिरकाल की इच्छा पूर्ण कर स्वेच्छा से चले गये। हरिदास जी जायेंगे इसका भक्तों को पता भी नहीं था। वे समझते थे कि हरिदास जी अस्वस्थ हैं इस लिये कीर्तन करने आये हैं। हरिदास जी और प्रभु की जो गुप्त बातें हुई थीं उनका भक्तों को पहले कुछ भी पता न था। जब प्रभु हरिदास जी का गुण गान कर रहे थे तभी भक्तों का यह सब हाल मालूम हुआ। प्रभु बोले, "हरिदास जाना चाहते थे मैं उन्हें रख नहीं सका। हरिदास मुझे सन्मुख रख कर गोलोक जाने की प्रार्थना करने लगे और श्रीकृष्ण ने वैसा ही किया"।

भक्तगण यह देख आश्चर्य करने लगे और हरिदास जी चले गये इसका विश्वास नहीं कर सके परन्तु फिर देखा कि वास्तव में वे अन्तर्धान हो गये। जब भक्तों को मालूम हुआ कि हरिदास जी चले गये तब सभी गगनभेदी हरि ध्वनि करने लगे। प्रभु हरिदास जी के मृत देह को गोद में उठा आनन्द से विह्वल हो नृत्य करने लगे। आनन्द क्यों? हरिदास जी की विजय पर और भक्त के प्रताप पर! तब भक्तगण भी प्रभु के आनन्द तरंग में पड़ नृत्य करने लगे।

श्री भगवान् के पिता, माता, स्त्री, पुत्र व कन्यादि परिवार कोई नहीं है उनके तो भक्त ही सब कुछ हैं। हरिदास जी के मृत देह को गोदी में उठा उन्होंने दिखा दिया कि भक्त और भगवान् में परस्पर कितनी प्रीति है।

प्रभु विह्वल हो नृत्य कर रहे थे उसी समय स्वरूपने उन्हें उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की बात याद दिलाई। तब एक गाड़ी पर हरिदास जी का मृत देह स्थापित कर सभी कीर्तन करते हुये समुद्रतीर की ओर चले। प्रभु आगे आगे और भक्तगण पीछे पीछे नृत्य कीर्तन करते हुये जाने लगे और भी बहुत से लोग हरिध्वनि करते हुये साथ हो लिये। समुद्र तीर पहुंच कर शव को स्नान कराया गया।

प्रभु बोले, "आज से समुद्र महातीर्थ हुआ"। तब भक्तगण ने बालू में समाधि खोदी और हरिदास जी के अंग पर चंदन माला दे कर उनका पदोदक पान कर कीर्तन ध्वनि करते हुये उनके देह को समाधि में सुलाया। फिर अन्त्येष्टि पूर्ण करने के बाद नृत्य कीर्तन प्रारम्भ हुआ और इसके बाद सभी आनन्द से हरिध्वनि करते हुये जलमें कूद पड़े।

स्नान करके सभी हरिदासजी की समाधि की प्रदक्षिणा कर लौटे और प्रभु के पीछे पीछे मंदिर के रास्ते जाने लगे भक्तगण समझे प्रभु दर्शन करने मंदिर की तरफ जा रहे हैं किन्तु वहां पहुंच कर प्रभु को देखा कि वे कपड़ा फैला कर पसारियों से भिक्षा मांग रहे हैं और कह रहे हैं कि हमारे हरिदास के महोत्सव निमित्त कुछ भिक्षा दो। भक्तगण प्रभु का अभिप्राय जान हाहाकार कर रोदन करने लगे। स्वरूप पसारीगणों को भिक्षा देने से निवारण कर प्रभु से निवेदन करने लगे कि आप घर चलें और हम लोग भिक्षा लेकर आते हैं। प्रभु भक्तगणों के साथ अपने स्थान पर चले आये और स्वरूप चार भक्तों को साथ ले भिक्षा आरम्भ करने लगे। स्वरूप बोले कि तुम लोग सब एक एक चीज दो और इस प्रकार चार बोझ लेकर वे भी डेरे पर आगये।

इधर नगर में हरिदास जी के मृत्यु संवाद पर महाकोलाहल होने लगा सारे नगर में हरि ध्वनि आरम्भ हो गई। श्रीजगन्नाथ क्षेत्र में मुसलमान के प्रवेश का निषेध है। जब प्रभु संन्यास ग्रहण कर नीलाचल आने लगे तब हरिदास जी विलाप करते हुवे बोले कि मैं प्रभुका दर्शन कैसे करूंगा। नीलाचल में प्रवेश करने का मुझे अधिकार नहीं है। तब प्रभु ने प्रतिज्ञा करके कहा था कि मैं तुम को वहां अवश्य ले चलूंगा। आज उसी हरिदास के अंतर्धान होने पर बाल, वृद्ध, युवा, ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र सभी आनन्द से और भक्ति से गद्गद् हो होकर हरिध्वनि कर रहे हैं। इसी वास्ते कहते हैं कि भक्ति, जाति पांति सब के ऊपर है।

स्वरूप गोसाईं जो चार भार भिक्षा लाये थे उससे अब महोत्सव होना सम्भव नहीं था कारण हरिदास की क्रिया का प्रसाद लेने को सभी नगर इच्छुक था। तब रामानंद के भाई वाणीनाथ और मंदिर कर्ता काशी मिश्र बहुत सा प्रसाद लाये।

प्रभु ने सब वैष्णवों को बैठाया और चार भक्तों को ले परोसना आरम्भ किया मानो महाप्रभु का पितृ वियोग होगया है ऐसा भाव है। स्वरूप ने प्रभु को इस कार्य से अलग कर आप स्वयं काशीश्वरजगदानंद और शंकर को लेकर परोसना आरम्भ किया। प्रभु के बिना कोई भी भोजन नहीं करेगा किन्तु उस दिन प्रभुको काशीमिश्र के घर निमन्त्रण था। काशीमिश्र प्रभु की भिक्षा सामग्री ले आये। प्रभु संन्यासी गण को साथ ले बैठे और सब वैष्णवों को खूब भर पेट भोजन कराया। मानो उनका अपना पितृश्राद्ध है।

भोजन के बाद प्रभु ने सबका माला चंदन आदि से सत्कार किया और बोले "जिस जिसने इन कामों में भाग लिया है उसको अवश्य ही कृष्ण प्राप्ति होगी। श्रीकृष्ण ने कृपा करके संग दिया था अब ये ही कृपा करके उसको लेगये"।

वस्तुतः हरिदासजी के न होने से उनका नित्य का एक सुख का कार्य शेष होगया। नित्य प्रति समुद्र स्नान कर हरिदासजी से मिलना अब न होगा। हरिदास जी ने जो वर मांगा सो पाया। यहीं से प्रेम हाट का टूटना आरम्भ होगया। प्रभु के लीला सम्वरण की यही प्रथम सूचना है हरिदास जी का संसार त्याग इसका प्रथम लक्षण है।

—○○—

प्राणा-धार

[ले० पं० हनुमानप्रसाद शर्मा "सैनिक"]

१

रे मन ! क्यों तरसै, उठ चल तू ,
जहां सियावर राम !
दया सिन्धु वे। दयादृष्टिसों ,
हेरि सारि हैं काम !!

२

अंसुवन से स्नान कराना ,
प्रेम भाव के फूल !
आनन्द सों श्रद्धा की माला ,
पहिराना मुदमूल !!

३

तप्त उसाँस की धूप दिखाना,
विरहा तल को दीप !

आर्तनाद को शंख बजाना,
सैनिक जाइ समीप !!

४

धरना सर्वस भेंट फेर तुम,
जाना बलि बलिहार !
ऐसी लगन लगाइ मिलै तब,
पै है शरण-धार !!

भगवद्भक्ति

[ले० पूज्य श्रीस्वामी भोले बाबा अनूपशहर]

ऊर्ध्वपूर्णमधः पूर्णं मध्यपूर्णं शिवात्मकम् ।
प्रमाशून्यं मनः शून्यं बुद्धिशून्यं भजाम्यहम् ॥

कीर्तन निष्ठा

कुं:-कीर्तन शुचिकर पापहर, अक्षय सुखदातार ।
कीर्तन करते धन्य ते, होते भव से पार ॥
होते भव से पार, गर्भ में लौट न आते ।
सोते सुख की नींद, राज्य निष्कंटक पाते ॥
भोला ! तज सब काम, प्रेम से कर हरि चिंतन ।
जप पावन हरिनाम, नित्य कर भगवत् कीर्तन ॥

संसाराम: महाराज ! कल आपने श्रवण निष्ठा का वर्णन किया था और चार भक्तों की कथा सुनाई थी, कृपा करके आज कीर्तन की महिमा, कीर्तन का स्वरूप सुनाइये और कीर्तन निष्ठा वाले भक्तों की कथायें भी श्रवण कराइये । आपके वचनामृत सुनने से तृप्ति नहीं होती ।

मस्तराम:-भाई ! इस कीर्तन निष्ठा की महिमा और बड़ाई कोई वर्णन करने को समर्थ नहीं है । संसार में तरण तारण पद जो विख्यात है, वह इसी निष्ठा के उपासकों के आधीन है । इसमें कुछ भी संशय नहीं है कि भक्ति और मुक्ति इसी निष्ठा पर निर्भर है । जो कोई जिस ऊंची पदवी पर पहुंचा है, वह केवल कीर्तन के अवलम्बन से ही पहुंचा है, दूसरे प्रकार से नहीं पहुंचा है । श्रवण निष्ठा में यह जो कहा था कि श्रवण के प्रभाव से भगवान् की प्राप्ति होती है इसका तात्पर्य यह ही है कि जब भगवच्चरित्रों का श्रवण करेगा तब भगवान् की महिमा जानने में आवेगी और फिर वह भगवच्चरित्रों का कीर्तन करेगा । कीर्तन का श्रवण साधन है और श्रवण का फल कीर्तन है । यदि कोई भगवच्चरित्रों को केवल सुन ही ले और कीर्तन न करे तो भगवान् नहीं मिल सके । सिद्धान्त यह है कि कीर्तन द्वारा ही श्रवण फल देता है, बिना कीर्तन श्रवण फल नहीं देता । इसी लिये शास्त्रों में श्रवण के पीछे कीर्तन का वर्णन है, 'कीर्तन शब्द का अर्थ कहना है यानी जो कहने में आवे उसका नाम कीर्तन है । शास्त्र के अभिप्राय से सब प्रकार के कथन का नाम कीर्तन नहीं है किन्तु भगवच्चरित्रों के कथन करने का नाम ही कीर्तन है । यह कीर्तन कई प्रकार का है, परस्पर मिल कर भगवान् की चर्चा करना, भगवत् चरित्रों का गान करना, भगवान् की कथा कहनी, भगवान् के चरित्रों की काव्य रचना, भगवत के मंत्र का अथवा नाम का मुख से उच्चारण करना, स्तोत्रादि का पढ़ना पढ़ाना अथवा मासिक, साप्ताहिक पत्रों द्वारा भगवान् की लीलाओं आदि का प्रकाश करना, इत्यादि जिस

प्रकार से कोई भक्त भगवत् परायण हो, इस प्रकार के लिखने, पढ़ने, कथन करने, को कीर्तन कहते हैं। जितने भक्त हो चुके हैं, अब हैं, और आगे होंगे, कीर्तन निष्ठा में सब का पूर्ण विश्वास था और इसी निष्ठा के अवलम्ब से सब भक्त हुये हैं, इस निष्ठा बिना कोई भी भक्त नहीं हुआ जो कोई श्रवण के बाद कीर्तन करता है, उसको अवश्य भगवत् की प्राप्ति होती है और जो कोई कीर्तन नहीं करता, उस को कोई फल नहीं मिलता। समझने की बात है कि जब तक देखे सुने हुये का कीर्तन न किया जायगा, तब तक वह किस प्रकार मन में रह सक्ता है। नहीं रह सक्ता, भगवत् का वचन है कि मैं न तो वैकुंठ में रहता हूं, और न योगियों के हृदय में रहता हूं, किंतु हे नारद! जहां मेरे भक्त मेरा गायन करते हैं, वहां मैं रहता हूं। नारद सूत्र में लिखा है कि कीर्तन करने से भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं और अपने भक्त पर अनुग्रह करते हैं। भागवत् के एकादशस्कन्ध में कहा है, कि सत्य युग में ध्यान से, त्रेता में यज्ञ से, द्वापर में पूजा से मुक्ति होती है और कलियुग में तो केवल भगवत्कीर्तन ही प्रमाण है- इसी से कल्याण होता है। विष्णु धर्मोत्तर में लिखा है कि भगवत् का कीर्तन सब सुखों का देने वाला सब पापों का नाश करने वाला, मन को निर्मल करने वाला, धर्म का बढ़ाने वाला और भुक्त मुक्ति का देने वाला परम सार है। वेद विरुद्ध धर्म वाले भी इस बात को मानते हैं। सारांश यह है कि भगवत् कीर्तन के सिवाय अन्य कोई उपाय जन्म मरण के पाश में से छूटने का नहीं है। किसी विद्वान् का वचन है कि चाहे पानी के मथने से घी निकल आवे, रेत में से चाहे तेल प्राप्त हो जाय परन्तु भगवत् कीर्तन किये बिना संसार सागर से पार होना नहीं हो सक्ता, भगवत् कीर्तन के विधान में लिखा है कि कीर्तन करते २ मन कीर्तन में ऐसा मग्न हो जाय कि देह की दशा भूल जाय, देह का अनुसंधान ही न रहे, उसका नाम उत्तम कीर्तन है। इस विषय में लोक में यह कथा प्रसिद्ध है:-

अस्थियों की पहिचान

एकबार एक गवैया बहुत देर तक निरंतर भगवत् कथाका गान करता रहा और दूसरा श्रवण करता रहा। श्रवण कीर्तन करते दोनों प्रेममें डूबकर बेसुध होगये और अंतमें मरगये। लोगों ने दोनोंके शवोंको एकत्र करके जला दिया। दोनों की भस्म होगई। जब उनकी स्त्रियों ने यह वृत्तांत सुना तो उन्होंने आकर अपने अपने पति की हड्डियां राख में से अलग २ चुनली। किसी ने पूछा कि तुमको अपने २ पति की हड्डियों की प्रतीति किस प्रकार हुई तो कीर्तन करने वाले की स्त्री कहने लगी:-

स्त्री:-मेरा पति भगवच्चरित्रों का कीर्तन करते २ भगवच्चरित्रों के रस में ऐसा मग्न हो गया था कि उसके शरीर की एक २ हड्डी तक गल गई थी, इसी से मैं ने उसको पहिचान लिया भगवत् कीर्तन करने वाले के शरीर का एक २ अवयव भगवत् गान करने से द्रवीभूत होजाता है। अन्य के अवयवों से उसके अवयवों में महान् अंतर होता है।

दूसरी स्त्री:-मेरे पति का वृत्तांत यह है कि कीर्तन करने वाले के मुख रूप धनुष से जो भगवच्चरित्रों के तीर छूटते थे, वे मेरे पति के हृदय में इस प्रकार लगते थे कि हड्डियों में छिद जाते थे और उनमें छेद कर देते थे, इसी से मैंने अपने पति की

हड्डियां पहिचान लीं।

हे मंसाराम! यदि श्रवण और कीर्तन में ऐसी प्रीति हो तब तो क्या ही बात है, फिर तो बेड़ा पार होने में कुछ देर ही नहीं है। शास्त्रों का तो यह वचन है कि चाहे भगवत् का कीर्तन अंतःकरण से हो, चाहे ऊपर से दिखलाने के लिये हो, चाहे निष्काम हो और चाहे किसी फल की कामना से हो, कीर्तन करने से भगवद्भक्ति अवश्य प्राप्त हो जायगी और मन भी भगवत् के संमुख हो जायगा। यद्यपि कीर्तन सब प्रकार से लाभ दायक ही है फिर भी आजकल के कीर्तन करने वालों का वृत्तांत आश्चर्य रूप है कीर्तन करने वाले स्वार्थ विना भगवत् भजन के निमित्त से कीर्तन नहीं करते! धन के लिये कीर्तन होता है, भगवत के लिये नहीं होता। जो कुछ पढ़ते पढ़ाते हैं जीविका के लिये पढते पढ़ाते हैं। जन्म से बच्चे को यह ही सिखाया जाता है 'बेटा! करियो सोई, जा में हंडिया खुद बुद होई'। गाना बजाना, पढना पढाना जो कुछ सीखा जाता है सब उदर पूर्णता के लिये किया जाता है। श्रवण करने वालों का वृत्तांत तो श्रवण निष्ठा में सुना ही चुका हूं। कीर्तन करने वाले बहुत से ब्राह्मण कांख में भागवत् दबाये कथा की आड़ में कमाई करते फिरते हैं, उनकी कथा नहीं होती। इस का कारण यह ही है कि जब से उन्होंने कथा पढी है, तब से फिर कभी उसका विचार नहीं किया। नित्य कीर्तन किया करें तो बिना घूमने फिरने के ही आप से आप हजारों मनुष्य उन्हें कथा करने को बुलाया करें क्योंकि भागवत् और रामायण आदि पुराण सब भगवत् रूप हैं। जो कोई भगवत् कीर्तन की आराधना करता है उसकी मनोकामना अवश्य सिद्ध होती है। कोई कहते हैं कि आज कल प्रेमी कथा कहने वाला मिलता ही नहीं, यह उनका कथन ठीक नहीं है, हजारों लाखों पंडित प्रेमी भी मिलते ही हैं, वसुंधरा रत्नों से खाली नहीं है। परन्तु हम लोगों को उनका मिलना ही कठिन है क्योंकि हम अपने अवगुणों के कारण उनके गुणों को नहीं देख सके, अवगुणों को ही देखते हैं, उनके प्रेम और भक्ति पर दृष्टि नहीं जाती, जैसे हम हैं, वैसा ही हम दूसरों को जानते हैं। लोकोक्ति भी है कि 'जग मौसा'।

हरिभक्त और विषयी की कथा

दो पुरुष रात को एक सराय में टिके। एक उनमें हरि भक्त था और दूसरा विषयी था। दोनों रात भर आनन्द लूटते हुये जागते रहे। जब प्रातः काल दोनों ने एक दूसरे को देखा तो विषयी मद्यपान करने वाले ने भगवद्भक्त को समझा कि इसने रात भर मुझ से भी अधिक विषय भोग किया होगा और जो भगवत् भजन में रात भर जागता रहा था, उसने समझा कि यह भी मेरे समान या मुझ से भी अधिक रात भर भगवत् भजन करता रहा होगा। किसी ने सच कहा है कि जो कोई नापता है अपने गज से ही नापता है। इसलिये प्रेमी कथा कहने वाले हमको नहीं मिलते। यदि हम भगवत् भजन करने वाले और प्रेमी हों तो कथा कहने वाले अनायास मिल जांय और वे स्वयं ही हम को ढूंढ लें। शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को और सूत जी ने शौनकादि को स्वयं ही ढूंढ लिया था, यह बात प्रसिद्ध है, जैसे को तैसा मिलता है, यह नियम है। यदि पूर्ण प्रेमी और भक्त न मिलें तो न सही जैसे मिलें, उन्हीं पर विश्वास करना चाहिये क्योंकि

हम से तो अधिक ज्ञाता हैं ही, प्रथम तो शास्त्र अच्छे प्रकार जानते हैं, दूसरे ब्राह्मण हैं फिर उनसे कथा सुनने में क्यों संकोच करना चाहिये। ब्राह्मणों की महिमा वेद और शास्त्रों में लिखी है कि ब्राह्मण भगवत् रूप हैं। रामायण में भगवत् का वचन है कि ब्राह्मण चाहे विद्यायुक्त हो, चाहे विद्याहीन हो, ब्राह्मण मेरा अंग है। कोई २ दो चार अंग्रेजी, फारसी टीका की पोथियां पढ कर अपने आपको सर्वज्ञ ज्ञानवान् समझ कर अथवा बड़े ओहदे पर होकर धन ऐश्वर्य पाकर कहने लगते हैं कि हम में और ब्राह्मणों में क्या भेद है? ब्राह्मण वही है जो ब्रह्म को जाने जैसे वे मनुष्य हैं ऐसे ही हम मनुष्य हैं। कुछ उनके सींग तो लगे नहीं है! यह उनका वर्णन वेद विरुद्ध और सर्वथा अयुक्त है। ब्राह्मण मनुष्य नहीं हैं, देवता भूसुर और भूदेव उनका नाम है। जिन अश्रद्धालुओं को मनुष्य दिखाई देते हैं तो भी जैसे तारों से सूर्य का, अन्य पशुओं से गौ का, अन्य वृक्षों से पीपल का भेद है इसी प्रकार अन्य मनुष्यों से ब्राह्मणों का भेद है। ब्राह्मणों को सब प्रकार से बड़ाई है, लोक परलोक का विधि विधान ब्राह्मणों ने ही निकाला है, जिस किसी को भगवद्भक्ति अथवा मुक्ति की प्राप्ति हुई है, ब्राह्मणों की सेवा से ही प्राप्त हुई है। अब भी गुरु और आचार्य ब्राह्मण ही हैं। ब्राह्मणों में अविश्वास होना भाग्य का खोट है। किसी २ के आचरण कलियुग के प्रभाव से दुष्ट देखने में भी आवें तो भी उन पर श्रद्धा न करना अयोग्य है, अग्नि दब भी जाय तो भी तेज मिट नहीं जाता। जिनको ब्राह्मण पर विश्वास नहीं वे भगवत् के घर से निकाले जाते हैं, लोक में कहीं भी उनको सुख नहीं मिलता, जिसने ब्राह्मणों से द्रोह किया, उसको सुगति प्राप्त न हुई और जिसने ब्राह्मणों की सेवा की, वह संसार में यशी भगवद्भक्तों में गिना गया, कथा करने के लिये जैसा ब्राह्मण आचार्य मिल जाय, वह भगवत् रूप ही है। विश्वास तत्त्व है, विश्वास बिन साक्षात् ब्रह्मा का उपदेश भी फल दायक नहीं होता! हे संसाराम! सब कथन का सारांश यह है। कि भगवत् कीर्तन भगवत् प्राप्ति का मुख्यतर साधन है, कीर्तन करने से सहज में ही लोक परलोक अभ्युदय प्राप्त होता है और अंत में भगवत् प्राप्ति होती है। भगवत् प्राप्ति होते ही अधिकारी मनुष्य सर्वदा के लिये सुखी हो जाता है, स्वप्न में भी कोई दुःख उसके पास नहीं फटकता! संसार में उन्हीं का जीवन सफल है, जो सब झंझटों से मुक्त होकर भगवत् कीर्तन में लगे रहते हैं। ऐसे भक्त स्वयं कृत कृत्य हैं और दूसरों को भी संसार सागर से पार ले जाते हैं। एक भक्त कीर्तन न करने का पश्चात्ताप करता हुआ, भगवान् से इस प्रकार प्रार्थना करता है :-

भक्त का निवेदन

हे नन्दनन्दन भक्त उरचन्दन! दुष्टदल-निकन्दन! हे यशोदा दुलारे! भक्तों की आंखों के तारे. हे बांके बिहारी! माधव मुरारी! हे दीनबंधु! करुणासिंधु! हाय! इस मतिमन्द पापी मन ने आज तक कभी भी आपके कीर्तन और अद्भुत चरित्रों में चित्त लगाने न दिया! बालकपन तो बाल विनोद खेलने खाने पीने में खो दिया, जवानी दिवानी भांति २ के अपकर्म और संसार के निस्सार स्वादों में व्यतीत हो गई अब दुःख और रोगों का भंडार दिन रात रुलाने वाली वृद्धावस्था आ पहुंची है! कष्ट के बाद कष्ट का सामना है फिर भी किसी

प्रकार आपके चरणकमलों में मन नहीं लगता! यद्यपि यह बात भली प्रकार जानता है कि आपके चरणों की शरण लिये बिना ब्रह्मा भी इस अपार संसारसागर से मुक्त नहीं कर सक्ते। फिर भी दुष्ट मन माया के जाल में ऐसा फंस गया है कि अपने हित अहित, हानि लाभ पर तनक भी दृष्टि नहीं करता! आपके चरणारविन्द के सिवाय त्रिलोकी में कहीं भी रक्षा का ठिकाना दिखाई नहीं पड़ता! इसलिये हे करुणाकर! हे आर्तहर! आपकी दया और करुणा की आशा करके आपके संमुख नम्रभाव से कुछ निवेदन करता हूं। हे दीनानाथ! आपका नीचे का ध्यान समाज मेरे हृदय की जलन को दूर करता हुआ नित्यानन्द का देने वाला हो!

ध्यान समाज

सरयू के निकट अयोध्यापुरी पावन पुरी है, पावन पुरी में भगवान् का धाम है, भगवान् के धाम में एक सुन्दर राजद्वारी है, राजद्वारी में सभा का मंदिर ऊंचा बना हुआ है, सभा मन्दिर का द्वार, प्रकार और भूमि भाँति २ के लाल, पीत, श्वेत आदि मणियों से जटित है! मन्दिर में स्वर्ण सूत्र का एक अद्भुत मंडप है, मंडप में चारों ओर झालरें लटक रही हैं! झालरों में दिव्य स्वर्ण सत्रों के गुच्छे और मोती टक रहे हैं! मंडप के नीचे एक ऐसा दिव्य सिंहासन रक्खा हुआ है कि इस में जड़े हुये मणियों को देख कर आंखों में चकाचौंध आ जाता है। कृपासिन्धु, दीनवत्सल, करुणाकर, पतितपावन, अधम उधारण श्रीरघुनन्दन स्वामी जी महाराज उस सिंहासन के ऊपर इस शोभा से विराजमान हैं कि किशोर अवस्था है, मुख की सुन्दरता से सुन्दरता भी सुन्दरता पा रही है! शिर पर जड़ाऊ किरीट-मुकुट धारण किये हुये हैं, कानों में कुंडल शोभा दे रहे हैं. उन कुंडलों में जनकनन्दनी चराचरवन्दनी श्रीसीता महारानी जी ने फूलों के गुच्छे अपने हाथों से गूंथ कर डाले हैं। दिव्य वस्त्राभूषण बड़े सजावट के साथ जगर मगर पहिरे हुये हैं। छाती पर मणियों और फूलों की माला पड़ी हुई है, मोतियों के कंठे गले में हैं, हाथों में कड़े और पहुंची हैं, अंगुलियों में रत्न जटित अंगुठियां हैं, और चरणकमलों में घुंघुरू और कड़े शोभित हैं! ऐसी ही शोभा के साथ अखिल ब्रह्माण्डेश्वरी, श्रीजनकदुलारी वाम अंग में शोभायमान हैं। दोनों के मुख की झलक आभूषणों पर और आभूषणों की झलक जो मुख पर पड़ती है तो एक ऐसी आनन्द की धारा और शोभा की छटा निकली है कि जो २ वहां बैठे हुये हैं, वे सब अपने को भूल कर सुख के समुद्र में मग्न हो गये हैं! भरत जी छत्र लिये हुये हैं, लक्ष्मण जी चंवर लिये खड़े हैं, शत्रुघ्नजी धनुष बाण धारण कर रहे हैं और हनुमान जी संमुख हाथ जोड़े खड़े हुये हैं। शिव ब्रह्मादिक देवता आकाश में स्तुति कर रहे हैं! देश २ के राजा आये हुए हैं और अपनी २ भेंट लिये हुये खड़े हुये हैं। अनेक प्रकार की अन्य सामग्री भक्त को आनन्द देने वाली मौजूद है! राजतिलक का साज भक्तों के मन में समाया हुआ है और एक तरफ एक कोने में यह दास भी अपने ओढ़दे उपानह की सेवा पर खड़ा हुआ है।

हे मंसाराम! कीर्तन निष्ठा सभी भक्तों की है, सब की कथा कहना कठिन है, उनमें मुख्य भक्तों की कथा सुनाता हूं:-

कथा वाल्मीकि जी की।

वाल्मीकि जी का जन्म ब्राह्मण वंश में हुआ था। संयोगवश बालपने में किसी भील के हाथ आगये। भील ने पुत्र के समान इनका पालन पोषण किया और भील की कन्या के साथ ही विवाह भी कर दिया। भीलों का उद्यम पथिकों को लूटना ठगी और व्याधकर्म इनको सिखाया गया। वही उद्यम बहुत काल तक वाल्मीकि जी करते रहे। एक वार कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, वशिष्ठ, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि सप्त ऋषि उस वन में आ निकले। वाल्मीकि जी ने उनको लूटने का विचार किया और उनसे जो कुछ उनके पास था, रख देने को कहा। ऋषीश्वर कहने लगे 'भाई ! यह दुष्ट कर्म तू क्यों करता है'? उत्तर मिला 'बाल बच्चों के पालने के निमित्त करता हूं, मेरा यह ही उद्यम है!' ऋषीश्वर बोले 'भाई ! तेरा यह उद्यम पापमय है, इसका फल दुःख तुझे भोगना पड़ेगा, तू अपने घर वालों से यह तो जाकर पूछ आ कि 'क्या वे तेरे पाप और दुःख में भी साझी होंगे अथवा अपने सुख के ही मात्र साथी हैं ?' ऋषीश्वरों के दर्शन से वाल्मीकि जी का अंतःकरण शुद्ध होगया था, घर पूछने गये तो किसी ने पाप में साझी होना अंगीकार नहीं किया। वाल्मीकि जी ने लौट कर यह ही वृत्तांत ऋषीश्वरों को सुनाया तो ऋषीश्वर कहने लगे 'भाई ! जब वे तेरे पाप में साझी नहीं होते तो तू उनके लिये अपना परलोक क्यों बिगाड़ता है। इतना सुन कर वाल्मीकि जी के मन में वैराग्य उत्पन्न हो आया, भय से कांपने लगे, आंखों में जल भर आया हाथ जोड़ कर कल्याण का मार्ग पूछने लगे ! ऋषीश्वर दया करके राम नाम का उपदेश देकर चले गये। वाल्मीकि जी को राम राम के स्थान में 'मरा मरा' याद रहा, एकाग्रचित्त होकर 'मरा मरा' का जप करने लगे और जप करते करते अपने शरीर की भी सुध भूल गये। कुछ काल पीछे फिर सप्त ऋषि उधर को आये और वाल्मीकि जी को ढूंढने लगे तो उनके देखने में यह लीला आई कि एक बामी के समीप जो कोई पशु पक्षी जाता है, वह राम राम कहने लगता है। इस चिन्ह से ऋषीश्वरों ने वाल्मीकि जी का पता लगा लिया और बामी में से उनको बाहर निकाला। अब तो वे सब प्रकार से शुद्ध और सिद्ध हो चुके थे, राम नाम के प्रताप से आप सब कुछ जान गये थे, किसी वेद शास्त्र पढ़ाने का अथवा धर्म कर्म सिखाने का प्रयोजन ही नहीं रहा था। वाल्मीकि जी के शरीर पर मिट्टी जम जाने से उनका शरीर बामी स्वरूप हो गया था इसलिये ऋषीश्वरों ने इनका नाम वाल्मीकि रक्खा और वे वहां से चले गये। तब वाल्मीकि जी सर्वज्ञ और त्रिकाल दर्शी हो गये थे। मन में विचारने लगे कि जिसके नाम के प्रभाव से मुझे सर्वज्ञता प्राप्त हुई है, उसका वर्णन करना चाहिये। यह ध्यान आते ही भगवत् की आज्ञा से नारद जी ने आकर उपदेश दिया और भविष्य राम चरित्र वाल्मीकि जी को ध्यान में दिखला दिये। उसी के अनुसार रामावतार से दश हजार वर्ष पहिले सौ करोड़ श्लोकों में रामचरित्र की वात्सल्य उपासना रूप से अपनी भाषा में रचना की अर्थात् राजपुत्र रूप से भगवान् का वर्णन किया। पश्चात् उस रामायण को शिव जी ने तीनों लोकों में फैलाया। हे मंसाराम ! राम नाम कीर्तन की महिमा

कोई कहां तक वर्णन करे ? वाल्मीकि जी प्रथम तो ऐसे थे कि ऋषीश्वर उनकी छाया, का भी स्पर्श नहीं करते थे और फिर राम के प्रभाव और कीर्तन से वेही वाल्मीकि जी इस पदवी को पहुंचे कि जिन की कथा और जिनका कथन संसार ताप को दूर करने के लिये छत्र छांह हो गया . ऐसे राम नाम की महिमा जितनी वर्णन की जाय उतनी थोड़ी है ! जब वाल्मीकि जी को भगवान् के बाल चरित्र देखने की अभिलाषा हुई तो जनक नन्दिनी उनके आश्रम में आकर रहीं और लव कुश का जन्म हुआ । उन्होंने नाना प्रकार के बाल चरित्र दिखलाये । अश्वमेध में लवकुश दोनों कुमारों ने यज्ञ का घोड़ा बांध लिया, हनुमान आदि सब को पराजय किया, पीछे वाल्मीकि जी के साथ अयोध्याजी में गये । यह कथा रामाश्वमेध में प्रसिद्ध है ।

कुं:—जप कर भगवन्नाम का भीज भये सर्वज्ञ ।
कवियों मांही आदि कवि, तिहूं काल मर्मज्ञ॥
तिहूं काल मर्मज्ञ, चरित भगवत् के गाये ।
जनक सुता घर आय, बाल लवकुश सुत जाये ॥
कीन्हे चरित अपार, रूप बालक धरि सुन्दर ।
भोला ! कर हरि गान, नाम भगवत् का जप कर ॥

कथा शुकदेव जी की ।

ब्रह्मांड भर में ऐसा कौन है, जो शुकदेव जी की महिमा का वर्णन कर सके ? कोई नहीं है ! जिन के मुख से श्रीमद्भागवत् रूप अमृत की धारा ऐसी निकली है, जो सब पान करने वालों को अमर कर देती है. उनकी महिमा किसी प्रकार वर्णन नहीं हो सकी ! एक बार देवाङ्गनाओं ने स्नान करते हुये शुकदेव जी से लज्जा न की और व्यास जी को देख कर लज्जित हो वस्त्र धारण कर लिये । जब व्यासजी ने कारण पूछा तो उत्तर मिला कि सिवाय भगवत् रूप के शुकदेव जी जगत् में दूसरा रूप नहीं देखते सर्वत्र भगवत् को ही देखते हैं, दूसरा ज्ञान उनको नहीं है, आपको तो सब प्रकार का ज्ञान है इसलिये आप से लज्जा है । शुकदेव जी माता के गर्भ से ही भगवद्भक्त और ज्ञानवान् हुये थे । तत्वज्ञ मुनि इस का कारण यह बतलाते हैं कि एकबार पार्वती जी ने शिवजी से तत्व ज्ञान पूछा । तब शिवजी ने अपने आश्रम के सब जीवों को अलग करके तत्व ज्ञान का उपदेश आरंभ किया । पार्वती जी को कुछ देर पीछे नींद आगई । भगवत् की इच्छा से एक शुक का बच्चा उस आश्रम में रह गया था, वह पार्वती जी के बदले 'हूं हूं' करता रहा और ज्ञान सुन कर अमर हो गया, जब शिव जी को यह बात मालूम हुई तो क्रोध करके मारने के लिये उद्यत हुये । ऐसा देख कर शुक का बच्चा भागा और व्यास जी की पत्नी के उदर में बारह वर्ष तक छुपा रहा, पश्चात् देवता और ऋषीश्वरों की प्रार्थना से शुकदेव जी महाराज ने जन्म लिया और गर्भ से बाहर आते ही तुरन्त वन को चल दिये । मोह के वश व्यासजी 'हे पुत्र ! हे पुत्र .' करते हुये पीछे २ दौड़ने लगे । तब वन के वृक्षों में उनको यह ध्वनि सुनाई दी:-

ध्वनि:- मैं और तू 'मेरा और तेरा' पिता और पुत्र, 'सुख और दुःख' यह सब भ्रम है ! इस संसार में नहीं मालूम तुम कितनी बार मेरे पिता हुये हो ! जो कुछ चराचर मेरे तुम्हारे देखने में आता है, वह सब भगवत् रूप है ! भगवत् के जानने का हेतु विद्या है यदि विद्या पढ़कर भगवत् को न जाना तो पढ़ना

निष्फल है! यदि द्वैतभाव न छूटा तो विद्या अविद्या ही है! 'मैं तू' 'मेरा तेरा' 'पिता पुत्रभाव' छोड़ दीजिये और घर को लौट जाइये! विद्या को अविद्या बना कर लान्छन न लगाइये! जान बूझ कर भोगों में फंसना मूर्खता है! भगवद्भजन सार है, भगवद्भजन से मुझे न रोकिये और आप भी भगवत् भजन कीजिये!

व्यास जी यह उत्तर सुन कर घर लौट आये फिर भी मोह वश इस विचार और उपाय में लगे रहे कि किसी प्रकार शुकदेव जी लौट आवें। कितने ही विद्यार्थियों को श्रीमद्भागवत् के श्लोक सिखा कर जिस वन में शुकदेव जी रहते थे, वहां भेज दिये, एक दिन किसी विद्यार्थी के मुख से शुकदेव जी ने यह श्लोक सुना:-'यह पापात्मा पूतना स्तन में विष लगा कर मारने के लिये गई परन्तु उसको वह गति प्राप्त हुई जो दूसरे को प्राप्त होना कठिन है, ऐसा दयालु कौन है कि जिस के शरण जावे। यह सुन कर शुकदेव जी विस्मित हो स्नेहबद्ध हो गये और विद्यार्थियों से आकर पूछने लगे कि यह श्लोक तुमने किस से सीखा है। विद्यार्थियों ने व्यास जी का नाम बताया। शुकदेव जी यह सुन कर वन से चले आये और अत्यंत प्रेम से व्यासजी से श्रीमद्भागवत् का अध्ययन किया, पीछे शुकदेव जी को यह इच्छा हुई कि किसी प्रेमी को भागवत् सुनानी चाहिये परन्तु कोई अधिकारी देखने में नहीं आया अंत में राजा परीक्षित को अधिकारी समझ कर गंगा किनारे पर भागवत् सुना कर सात दिन में भगवत् परायण और मुक्त कर दिया। राजा की सभा में से जिस २ ने भागवत् श्रवण की वे भी भगवत्परायण हो गये और अब भी कोई सुनता है, वह भी परमपद का अधिकारी हो जाता है। हे मंसाराम! श्री मद्भागवत् और शुकदेव जी की महिमा जितनी वर्णन की जाय, उतनी थोड़ी है, पापी से भी पापी भागवत सुन कर भगवत्परायण हो जाता है।

छप्पय:—व्यास पुत्र शुकदेव, वाक्पति ध्यानी ज्ञानी।
देखि जिन्हें सुरवधुति लेश लज्जा नहिं मानी॥
कथा भागवत् गाय, मोक्ष पथ सुगम दिखाया।
किया परीक्षित मुक्त, दिशा दश में यश छाया॥
भोला! मत करि मोह अब, 'मैं' 'तू' 'मेरा' त्यागरे।
शुक गाथा नित पाठ कर, भगवत् पद अनुरागरे॥

अपूर्ण

उपालंभ

[ले० श्री पं० मोहनजी शर्मा "विशारद"]

१

कहलाते हो जगत् पिता हे ईश नियामक नाथ।
प्रभो इसी से संतत तुमको नाते हैं सब माथ॥
करते हैं गुण गान तुम्हारा अन्वह सब सुदमान।
देदेते हो कभी २ पर तुम भी दुःख महान॥

२

बहुत दिनों से आकुल है प्रभु किया नहीं परित्राण।
रोते पड़े हुए हैं भगवन्! पराधीन हैं प्राण॥
कब होवेगी पूर्ण हमारी यह चिर दिन की आशा।
टूटेगी कब यह दुःखदायी पराधीनता पाश॥

श्रीराम नाम माहात्म्य

पूर्व प्रकाशित से आगे ।

'मार्कण्डेय पुराण' में श्री व्यास जी सूतजी से कहते हैं:-

अज्ञान प्रभवं सर्वं जगत्स्थावर जंगमम् ।
रामनाम प्रभावेण विनाशं यायते ध्रुवम् ॥ ४५
धन्यं कुलं वरं तस्य यस्मिन् श्रीरामतत्परः ।
जायते सत्य संकल्पः पुत्र श्रीशेषवल्लभः ॥ ४६

सम्पूर्ण स्थावर जंगम कीट पतङ्गादिक नाना प्रकार की सृष्टि जो देख पड़ती है सो अज्ञान से स्वस्वरूप के न जानने से ही नजर आती है, जिस समय श्री रामनाम का जप यह जीभ स्वाभाविक ही करने लगती है तब अन्तःकरण शुद्ध होजाने से उस महात्माको सर्वत्र परिपूर्ण परब्रह्म परमात्मा श्रीराम ही दृष्टि पड़ते हैं, नानात्व का विनाश होजाता है। उसका कुल धन्य है! श्रेष्ठ है! जिसके कुल में श्रीराम तत्पर श्रीशेषवल्लभ सत्य संकल्प पुत्र का जन्म होता है।

'अग्नि पुराण' में श्री महादेव जी दुर्वासा जी से कहते हैं कि:

यच्चापराह्णे पूर्वाह्णे मध्याह्ने च तथा निशि ।
कायेन मनसा वाचा कृतं पापं दुरात्मना ॥ ४७ ॥
परंब्रह्म परंधाम पवित्रं परमं च यत् ।
राम नाम जपाच्छीघ्रं विनष्टं भवति ध्रुवम् ॥ ४८॥

प्रातःकाल, मध्याह्न काल, अपराह्न काल (तीसरे प्रहर) तथा रात्री में मन, वाणी और शरीर से किये पाप परमब्रह्म, परमधाम, पवित्र, श्रीराम नाम का जप करने से शीघ्र ही निश्चय नष्ट होजाते हैं।

श्री प्रह्लाद जी बालकों के प्रति कहते हैं कि:-

यत्प्रभावादहं साक्षाच्चीर्णो घोरभवार्णवम् ॥
अनायासेन बाल्येऽपि तस्माच्छ्रीनामकीर्त्तनम् ॥
कर्त्तव्यं सावधानेन त्यक्त्वा सर्वं दुराग्रहम् ।
साधनान्यं विहायाशु, कथां वैरस्य मात्मनि ॥ ५०

जिस श्रीराम नाम के प्रभाव से घोर संसार समुद्र से बालक पन में ही बिना श्रम से मैं पार हो गया हूं ? इसलिये हे बालको! विश्वास को धारण करके सकल अविश्रामय पठन का त्याग करके श्री राम नाम कीर्त्तन में तत्पर हो जावो, सावधान होकर सकल दुराग्रह त्याग कर और अनर्थ रूप साधन को त्याग कर सब को रस रहित जान कर श्रीराम नाम का रटन करो।

'भविष्योत्तर पुराण' में भगवान् श्रीनारायण श्रीलक्ष्मी जी से कहते हैं:-

भजस्व कमले नित्यं नाम सर्वेश पूजितम् ।
रामेति मधुरं साक्षान्मया संकीर्त्तितं हृदि ॥ ५१ ॥
गमिष्यन्ति दुराचारा निरये नात्र संशयः ।
कथं सुखं भवेद्देवी रामनाम बहिर्मुखे ॥ ५२ ॥

हे कमले! मेरे हृदय में निवास करने वाला सम्पूर्ण के पूजित मधुर और साक्षात् श्रीराम नाम को नित्य भजो। हे देवी! राम नाम से बहिर्मुख दुराचारी पुरुष निश्चय ही नरक में जाते हैं इस में संशय नहीं है उनको सुख कहां।

'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में नारदजी कहते हैं:-

अम्बरीष महाभाग शृणु मद्वचनं परम् ।
सर्वोपद्रवनाशार्थं कुरु श्रीराम कीर्तनम् ॥ ५३

हे बड़भागी अम्बरीष जी ! मेरे श्रेष्ठ वचन को सुनो, सम्पूर्ण उपद्रवों को नाश करने वाले श्रीराम नाम का कीर्त्तन करो ।

रामनामसमं चान्यत्साधनं प्रवदन्ति ये ।
ते चाण्डालसमाः सर्वे सदा रौरव वासिनः ॥ ५४ ॥

जो पुरुष राम नाम के समान अन्य साधन को बताते हैं वे चाण्डाल के तुल्य हैं ! सदा रौरव नरक में निवास करते हैं ।

श्रीरामेत्युक्तमात्रेण हेलया पुण्य वर्द्धनम् ।
पापौघं विलयं यान्ति दत्तमश्रोत्रिये यथा ॥ ५५ ॥

पुण्य को बढ़ाने वाले श्रीराम नाम के उच्चारण मात्र से ही सब पाप उसी क्षण इस प्रकार नाश हो जाते है, जैसे बिना वेद पढ़े विप्रको दान दिया हुआ व्यर्थ जाता है ।

'लिङ्ग पुराण' में लिखा है:-

वृथालापं वदन् व्रीडा येषां नायति सत्वरम् ।
हित्वा श्रीराम नामेदं ते नरा पशवः स्मृताः ॥ ५६ ॥
स्मर्तव्यं हि सदा राम नाम निर्वाण दायकम् ।
क्षणार्धमपि विस्मृत्य याति दुःखालयं जनः ॥ ५७

जो कोई पुरुष श्रीराम नाम को छोड़ कर व्यर्थ बकवाद करते किंचित् भी लज्जित नहीं होते हैं वे पशु तुल्य हैं । मोक्ष को देने वाले श्रीराम नाम को सदा ही स्मरण करना चाहिये क्यों कि क्षणार्ध भी राम नाम को भूलने से पुरुष दुःख के स्थान संसार को प्राप्त होते हैं ।

'वाराह पुराण' में लिखा है:-

दैवाच्छूकर शावकेन निहतो म्लेच्छो जरा जर्जरो ।
हारामेण हतोस्मि भूमि पतितो जल्पंस्तनुं त्यक्तवान् ।
तीर्णो गोष्पदवद्भवार्णवमहो नाम्नः प्रभावाद्धरेः
किंचित्रं यदि रामनाम रसिकास्ते यान्ति रामास्पदम् ॥

एक बुड्ढा म्लेच्छ पुरुष दैव योग से शूकर के बच्चे से मारा गया, भूमि पर गिरते समय हा ! राम (शूकर) से मैं मारा गया यह शब्द कहते हुये नश्वर शरीर को छोड़ कर वह म्लेच्छ अकस्मात् केवल मुख से राम उच्चारण होने से संसार रूपी समुद्र से गोष्पद के समान तर गया, सुतराम् जो राम नाम के रसिक हैं वे वैकुण्ठ धाम को जाते हैं तो इस में आश्चर्य ही क्या है ?

प्रथम भक्ति संतन कर संगा

[ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी]

पहिली भक्ति संतजनों का संग है । यह श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी रचित रामायण में लिखा है कि श्रीरामचन्द्रजी ने अपने श्रीमुख से शिवरी भिलनी के प्रति यह भक्ति वर्णन की है ।

विवेचनः-जैसे माता बच्चे को रोग हो जाने

पर रोग की निवृत्ति के लिये औषधि पिलाना चाहती है, परंतु कड़वी होने के कारण से बच्चा अपने मुंह को बंद कर लेता है। तो फिर माता अंगुली में गुड़ लगा कर उसके मुख में लगाती है ऐसी युक्ति करने से बच्चा मीठे के लालच से मुख खोल देता है, झट माता औषधि डाल देती है, इससे बच्चे का रोग निवृत्त हो जाता है। इसी प्रकार महापुरुषों ने यह युक्ति बताई है कि पहिली भक्ति संतों का संग है और ठीक भी है। क्योंकि अनन्य भक्ति संतों के संग से ही प्राप्त होती है, अन्यथा नहीं। सत संग की महिमा शास्त्रकारों ने सब से बढ़ कर बताई है यहां तक कहा है कि सात स्वर्ग और अपवर्गों के सुख सब मिला कर तराजू में रखे जांय तो एक क्षण मात्र के संत संग के बराबर नहीं हो सक्ते। यह बात वही पुरुष जान सक्ते हैं, जिन्होंने संत संग किया है, जिह्वा व लेखनी से कथन में नहीं आसक्ता है। श्रीवशिष्ठजी और विश्वामित्र जी का दृष्टांत तो सब लोगों को प्रकट है, इससे प्रतीत होता है कि वशिष्ठ जी का एक क्षण का सत संग विश्वामित्र के आजन्म तक संपूर्ण तपस्या से बढ़ कर शेष भगवान् ने सिद्ध कर दिया। इसी को शास्त्र में गुड़ जिह्वा न्याय कहते हैं। क्योंकि संत रूपी गुड़ की अंगुली है अनन्य भक्ति रूपी निरोगता है और पुरुषार्थ रूपी कड़वी औषधि है।

एक संत विचरते विचरते एक नगर में जा निकले, गर्मी के दिन थे धूप बड़े जोर से पड़ रही थी, बाजार में जाकर एक नीम के वृक्ष के नीचे आ बैठे प्यास बड़े जोर की लग रही था पास कुंआ भी था परन्तु संतजी के पास कोई पात्र नहीं था। सामने एक वैश्य की दुकान थी उस पर एक लड़का बैठा था संत ने उसकी तरफ पानी पीने का संकेत किया लड़का चेतन था झट संतजी के संकेत को समझ गया, और कुंए पर जाकर ताजी जल खींच कर लाया और शीघ्रता पूर्वक दुकान में से मीठा निकाल पानी में मिला कर संतजी को पिलाया। संतजी की प्यास की व्याकुलता शांत हो गई, वृक्ष के नीचे ही लेट गये रास्ते की थकावट थी लेटते ही नींद आगई।

लड़का सामने बैठा देख रहा था संत जी के पास आकर पैर दाबने लगा संत सुख की निद्रा में निमग्न थे, सत्य है यह कहावत लोक में प्रसिद्ध है।

कै सोवै जोगी अवधूत।
कै सोवै राजा का पूत॥

लड़का पैर दबाता रहा जब संतजी की निद्रा खुली तो लड़के को अपने पास पैर दबाते हुए देखा। संतजी बैठ गये और लड़के की तरफ दृष्टि करके बोले 'तेरा नाम क्या है ? तेरी जाती क्या है ? और क्या काम करता है' ?

लड़का विनय पूर्वक संत जी से प्रार्थना करने लगा श्रीमहाराज, मेरा नाम पेटपाल है, मैं वैश्य जाती में उत्पन्न हुआ हूं और पेट पालने की चिंता करना और ऐश्वर्य धनादि की वृद्धि में लगा रहना ही मेरा काम है।

यह सुन संतजी ने कहा 'अच्छा ये काम भी कर और शुभ कर्मों में प्रवृत्त हो' शुभ कर्मों से स्वर्ग और अशुभ कर्मों से नरक होता है, स्वर्ग में अनेक तरह के सुख और नरक में अनेक तरह के दुःख हैं। लड़के ने पूछा 'श्रीमहाराज ! शुभ और अशुभ कर्म कौन कौन से हैं जिनको जान कर शुभ करूं और

अशुभ का त्याग करूं और उनसे उत्पन्न हुए स्वर्ग नरक के सुख दुःख का विस्तार से वर्णन कीजिये।

संतजी ने कहा जिन कर्मों के करने के पहिले मन ग्लानि करे, राज्य से भय हो, यमराज से भय हो, शास्त्र में जिस कर्म के करने को वर्जित किया हो, समाज यानी लोक विरुद्ध हो और जिन कर्मों को करके भी पीछे मन ग्लानि करता रहे, जैसे जिह्वा के स्वाद के लिये अधिक भोजन कर जाना उस में मन पहिले भी ग्लानि करता है फिर पिछे भी ग्लानि करता है ऐसे कर्म कभी नहीं करना इन कर्मों से नरक होता है, जिसमें पहुंच कर दहकते हुए तप्त कुंडों में डाला जाता है, तप्त भूमि में नंगे पैर चलाया जाता है, जब नहीं चलता है तब यमदूत बड़े बड़े मुद्गरों की मार देते हैं तप्त लोहे की सलाकें इसके अंगों में लगाई जाती हैं। रुधिर पीव आदि के कुंडों में डाला जाता है और सर्व अंगों में महान् कष्ट पहुंचाया जाता है। तैंने कभी चित्रपट तो देखा होगा जिसको भीख मांगने वाले लाते हैं, जो कपड़े पर होता है उसमें नरक और स्वर्ग दोनों में जो हालत प्राणियों की होती है वह चित्रित होती है।

इतना सुन पेटपाल बोला 'श्रीमहाराज, ठीक है मैंने चित्रपट देखा है। राम २! राम २! अहो हो! बड़ा दुःख!! महान् दुःख!!! हे भगवन्! इससे बचने का उपाय मुझ को बतलाइये, मैं ऐसा दुःख कभी नहीं चाहता'!

संत बोले अच्छा तू कुछ पढ़ा है? पेटपाल कहने लगा 'श्रीमहाराज! नागरी और उर्दू की तो मिडिल पास हूं और कुछ अंग्रेजी भी जानता हूं। संत:-मैं बताऊं उसी अनुसार बर्ताव करने से नरक के दुःखोंसे बच जायगा। श्रीरामायण तुलसीकृत का पाठ किया कर और जहाँ तक बन सके ब्रह्मचर्य का भी पालन कर; चोरी, छल, झूठ आदि का कभी मन से भी चिंतन नहीं करना, सत्यादि धर्म शुभ कर्मों में प्रवृत्त रहना, उनसे तुझको स्वर्ग के सुख प्राप्त होंगे। इतना कह संत अंतर्ध्यान हो गये।

पेटपाल संत को गुरु मान उनके वचनानुसार चलता रहा, दैव वशात् बड़ा धनी होगया और मंदिर, गोशाला, पुस्तकालय, साधू आश्रम बनवाये और यज्ञादि करके ब्राह्मणों का बड़ा सम्मान करने लगा। कुछ काल बाद संत जी फिर वहां आनिकले और पेटपाल की याद उनको हुई उसके पास आये। पेटपाल ने विधिवत् साष्टांग दण्डवत् किया, संतजी को उच्च आसन पर बैठा धूप दीप आरती की, चरणोदक लिया। संतजी उसका भाव देख कर बहुत प्रसन्न हुए और पूछा क्या रामायण का पाठ करता है? पेटपाल बोला 'श्रीमहाराज! आप उपदेश देगये उसी दिन से बराबर नित्य पाठ करता चला आरहा हूं।

संत ने कहा अच्छा कितने पाठ हो गये? पेटपाल कहने लगा 'श्रीमहाराज, आज तीन वर्ष ६ महीने ९ दिन हो गये और १४१ पाठ हुये' संत ने कहा 'अच्छा अब तू पांच आवृत्ति पूरी रामायण की ५ दिन में कर तेरा अन्तःकरण शुद्ध होकर तुझको ज्ञान की प्राप्ति होवेगी। संत जी इतना कह कर फिर अंतर्धान हो गये।

पेटपाल ने गुरु आज्ञानुसार बड़े उत्साह के साथ वैसा ही किया संतजी कुछ काल पश्चात् फिर आयेऔर पेटपाल को प्रसन्न देख बहुत प्रसन्न हुए

पूछा अब क्या हाल है ? वह बोला आपकी कृपा है आप अंतर्यामी हैं। इतना सुन संतजी ने कहा अब तू पेटपाल से विश्वपाल होगया। उसका अंतःकरण तो शुद्ध था ही गुरु के मर्मयुक्त वचनों को सुन कर झट लक्ष कर गया। पेटपाल से संतजी ने पूछा तू कौन है ? पेटपाल ने उत्तर दिया श्रीमहाराज! शरीर बुद्धि से मैं आपका दास हूं जीव भाव से तुम्हारा अंश हूं और तत्त्व से मैं और आप एक ही हैं यह मेरा निश्चय है।

संत जी ने यह सुन कहा तेरा निश्चय ठीक है, इसी में रति, तृप्ति संतुष्टि कर परमानंद को प्राप्त होगा। संत इतना कह कर चले गये।

पेटपाल ने अपना नाम बदल कर विश्वपाल रख लिया और सुख चैन से काल व्यतीत कर शरीर के अंत में ईश्वर के परमधाम को प्राप्त हुआ।

प्रिय पाठको ! पेटपाल रूपी जीव है जब तक शरीर में अहंकार को धारण करता है, तभी तक इसकी जीव संज्ञा है, जब सर्व भाव से ईश्वर की शरण होजाता है और देहाभिमान को छोड़ देता है, तब ईश्वर के परमधाम का अधिकारी होता है।

इसलिये सर्व प्राणी मात्र को उचित है कि तन, मन, धन से संत संग में चित्त लगावें क्योंकि एक लोटे जल के पिलाने और थोड़ी देर के संत संग से पेटपाल विश्वपाल होगया वो दीर्घकाल तक संत संग के करने वालों को विश्वपाल बन जाना क्या दुर्लभ है यानी निस्संदेह संत के संग से अविचल अनन्य भक्ति को प्राप्त होगा। यह श्रीस्वामी तुलसीदास जी का कथन किया हुआ श्रीरामचन्द्रजी का वाक्य है। सर्व सज्जनों को उचित है कि इस वाक्य को सार्थक करें और अपना जीवन सफल करें।

हरिगीत छन्द

सब शास्त्र कहते हैं सभी सत संग मित्रो कीजिये।
बहु जन्म के सब पापको सत्संग से धो लीजिये॥
आशा विषय को छोड़ कर सत्संग में चित लाइये।
सद् पात्र बन कर आप भी भव सिंधु से तर जाइये॥१

कुंडलिया

आशा सब जाती रहैं, होवे पूरण काम।
सत्संगति मन लाइये, पहुंचो हरि के धाम॥
पहुंचो हरि के धाम, लौट नहिं जग में आवे।
आवागमन नशाय, दुःख का लेश न पावे॥
तजि जगकी सब प्रीति, सन्तके पहुंचो पासा।
आत्मा कीजे सेव, पास नहिं आवे आशा॥१॥
होता दुःख का अन्त, संतका जब संग होवे।
पाप सभी नश जाय, शांत हो सुख से सोवे॥
कभी न व्यापे मृत्यु, जन्म को कभी न धारे।
होवे अचल अकाम, दृष्टि से जग को तारे॥
संत संग से आत्म, ब्रह्म में लगाता गोता।
द्वैत सभी मिट जाय, एक का एकहि होता॥२॥

छप्पय

संत संग है सार, और नहिं यहां कुछ पावे।
जो आवे भव माहिं, बिन सब ही पछितावे॥
जिन कीन्हा सत संग, तत्त्व को वे लखि पाते।
आवागमन नशाय, लौटि नहिं जग में आते॥
आत्मा उनके वाक्य को, नित्य हृदय में धारते।
किंचित् कृपा कटाक्ष से, जिन भव कीन्हा पारते॥१

भक्ति स्वरूप वर्णन

[ले० श्री मधुमंगल जी मिश्र बी. ए.]

भक्ति को महात्माओं ने दो प्रकार की कहा है। पहिली सगुणा और दूसरी निर्गुणा कहाता है। वैधी और स्वाभाविकी के भेद से दोनों के दो भेद और होते हैं। किसी कारण से जो भक्ति उदय हो वह वैधी कहाती है जैसे:-

तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम् ॥

यहां भगवान् शुकदेव जी महाराज परीक्षित से कहते हैं कि अभय की कामना रखने वाले को भगवान् हरि ईश्वर का गुण श्रवण, स्मरण और गान करना चाहिये। यहां अभय की कामना से भगवत्स्मरण वैधी भक्ति हुआ। जो स्वाभाविक भक्ति निष्कारण उदय हो उसे स्वाभाविकी कहते हैं। जैसे:-

यः पञ्चहायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः ।
तन्नैच्छद्रचयन् यस्य सपर्यां बाल लीलया ।

उद्धव जी जब पांच वर्ष के थे तब एक दिन उन्हें माता ने प्रातःकाल भोजन को बुलाया। पर वे उस समय खेल में भगवान् की पूजा कर रहे थे। इस कारण उन्होंने कहा मा ! अभी पूजा करके तब भोजन को आवेंगे अभी भूख नहीं है। बालकों को भोजन स्वाभाविक रुचता है। सो न होकर भक्त उद्धव को बचपन ही में पूजनमें रुचि हुई। यह स्वाभाविक भक्तिका उदाहरण हुआ। कहना नहीं होगा, स्वाभाविक सगुणा वा निर्गुणा भक्ति अच्छी हैं और वैधी सगुणा वा निर्गुणा उनसे उतर के हैं।

दोनों प्रकार की भक्ति के नव भेद होते हैं। वे नीचे गिनाये हैं:- श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, पूजन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन और भी अनेक प्रकार की भक्ति हो सकती हैं। जैसे:- तुलसी, पीपल, वट, धात्री आदि वृक्षों की पूजा, गंगा, सरयू, नर्मदा आदि के तट पर निवास, उनके जलमें स्नान, वा जल का पान, अथवा उनकी यात्रा द्वारा दर्शन आदि, अतिथि सेवा, जन्माष्टमी एकादशीव्रत रखना और जागरण उत्सव मनाना, वैष्णव साधु महात्माओं की सेवा करना तथा उनके उपदेश सुनना आदि की।

भक्ति के सामान्य भेद ये हुए! मनुष्यों की प्रकृति के अनुसार सत, रज, तमोगुण की प्रवृत्ति से कामना पूर्वक सगुणा भक्ति होती है, जो निरपेक्ष भाव से भक्ति की जाती है वह सतोगुणी सगुणा भक्ति हुई। जो आशीर्वाद की आशा से भक्ति की जावे उसे रजोगुणी सगुणा भक्ति जाने। जो क्रूरता

विधर्मियों में भी सेवा का माहात्म्य मिलता है। अंग्रेजी में अबूबिन आदम के स्वप्न की कथा पद्य में है कि उसने स्वप्न में भगवद्भक्तों की नामावली लिखते देख देव दूत से पूछा कि मेरा नाम कहां है ? जब उत्तर मिला कि नहीं है तब उसने कहा अच्छा मनुष्यों को प्यार करने वालों में मेरा नाम लिखलो। दूसरी रात स्वप्न में देव दूत ने ईश्वर के प्रियजनों की नामावली में सब से पहिला नाम अबूबिनआदम का दिखलाया। सारांश यह है कि हिन्दू मुसलमान वा ईसाई सभी में मनुष्य सेवा वा परोपकार ईश्वर प्राप्ति का द्वार है।

पूर्वक भक्ति की जावे (पशु बलि आदि द्वारा) वह तामसी सगुणा भक्ति समझी जाती है। भगवान् कपिल ने भागवत् तृतीय स्कन्ध में कहा है:-

कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन् वा तदर्पणम् ।
यजेत् यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्विकः ॥
विषयानभिसंधाय यशऐश्वर्यमेव वा ।
अर्चादावर्चयेद्योमां पृथग्भावः स राजसः ॥
अभिसंधाय यो हिंसां दम्भं मात्सर्यमेव वा ।
संरम्भी भिन्न दृग्भावं मयि कुर्यात् स तामसः ।

ऊपर लिखी सत्वादि भक्ति का विशद रूप से वर्णन इन श्लोकों में किया है।

उत्तम मध्यम और अधम भेद से सात्विकी रजोगुणी और तामसी के ९ भेद हुए। श्रवणादि नवधा भक्ति में से प्रत्येक के यों नव नव भेद होकर सगुणा भक्ति के ही ८१ भेद हुए।

निष्काम भक्तिवाले सर्वकामनादात्री भगवद्भक्ति के इन भेदों को प्रशंसनीय नहीं समझते। तथापि संसारी मनुष्य विविध कामनाओं से भगवद्भक्ति करते ही हैं और भगवद्भक्ति कामनाओं की सिद्धि देती ही है अतः वह संग्राह्य ही समझी जानी चाहिये। भगवान् कश्यप ने कहा है:-

संविधास्यति ते कामान्हरिर्दीनानुकम्पनः ।
अमोघा भगवद्भक्तिर्नेतरेति मतिर्मम ॥

अर्थात् अन्य देवताओं की भक्ति के समान भगवद्भक्ति व्यर्थ नहीं है। वह अमोघ अथवा अव्यर्थ है भगवान् दीनों पर अनुकम्पा करते ही हैं इस कारण भगवद्भक्ति उपादेय और देवता तथा मुनियों द्वारा प्रशंसित भी है।

मोक्ष चाहने वाले प्राणियों के लिये सकामा भक्ति अग्राह्य है संसारी जीवों के लिये वह उपादेय अवश्य है।

भगवच्चरणदात्री निर्गुणा भक्ति की सेवा निष्काम मुमुक्षु जनों द्वारा की जानी चाहिये। क्यों कि उस अगुणा भक्ति में सत्व, रज, तम आदि माया के गुणों का अभाव है। उस भक्ति में फलानुसंधान नहीं रहता। अतः अहैतुकी कहाती है। कहा भी है:-

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रंथा अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्ति इत्थम्भूत गुणो हरिः ॥

अर्थात् भगवान् में यह विशेषता है कि संसार बन्धन को तोड़ देने वाले अपने आप में मगन मुनिगण भी भगवान् को बिना किसी प्रयोजन के प्यार करते हैं अहैतुकी भक्ति रखते हैं। वह भक्ति विघ्नों से-दुःख शोकादि से बाधित नहीं होती और निरन्तर व्यापी होती है जैसे गङ्गा जल समुद्र में पहुंच उसी में तन्मय हो लय को प्राप्त होता है।

निष्काम भक्तोंको सालोक्य, सार्ष्टित्व, सामीप्य वा सारूप्य भी दिया जावे तो उन्हें प्रिय नहीं होता। एक ही लोक में भगवान के साथ निवास सालोक्य कहाता है। समान ऐश्वर्य प्राप्ति को सार्ष्टित्व कहते हैं। भगवान् के निकट निवास सामीप्य कहाता है। भगवान् के रूप से समानता सारूप्य कहाती है। निष्काम भक्तों को भगवच्चरण सेवा ही अभीष्ट होती है! यदि भगवत्सेवा के साथ साथ ये मिल सकें तो उन्हें ये ग्राह्य हो सकते हैं। यह निष्काम भक्ति ईश्वर में परम अनुरक्ति स्वरूप है। इस निष्काम भक्तिमें छः गुण ये हैं:- क्लेशघ्नी, शुभदा, दुर्लभा, मोक्षलघुताकृत, सान्द्रानन्दविशेषा, और श्रीकृष्णाकर्षिणी। क्लेश पांच प्रकार के होते हैं। पहिला क्लेश अविद्या वा अज्ञान है। दूसरा क्लेश अस्मिता अर्थात् अहम्भाव

है। इन्द्रियों के अनुकूल विषयों की अभिलाषा को राग नामक तीसरा क्लेश कहते हैं। अनुकूल विषय की अप्राप्ति की दशा में असहन शीलताजन्य विपरीत आचरण रूपी द्वेष चौथा क्लेश है। इष्ट पदार्थ के परित्याग को न सहसकना पांचवा क्लेश अभिनिवेश कहाता है। यों इन पांचो प्रकारों के क्लेश को नाश करने वाली निष्काम भक्ति क्लेशघ्नी कहाई। आनुकूल्य कृपा, क्षमा, सारल्य, माधुर्य, धैर्य, समता, अकाम्य, परोपकारित्व, सर्वप्रियता, समानित्व आदि शुभ कहाते हैं। ये सब निष्काम भक्ति के साथी हैं। अपने आप में मगन होने के सुख के आगे मोक्ष सुख की तुच्छता भावना मोक्षलघुताकृत् कही गई है। अपने आधीन साधनों द्वारा असाध्य होने के कारण भगवद्भक्ति दुर्लभा कही गई है। घनी सुख रूपिणी होने के कारण भगवद्भक्ति सान्द्रानन्दविशेषा कही गई है। जैसे चुम्बक पत्थर कृष्ण लोहे को आकर्षित करता है तदनुसार निष्काम भक्ति भगवान् श्री कृष्ण को आकर्षित करती है। यों छ गुण भक्ति के कहे गये, सकामा भक्ति नव प्रकार की गिना आये हैं। उस नवधा भक्ति का स्वरूप भगवान् स्वयं श्री मुख से वर्णन करते हैं।

श्रद्धामृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम् ।
परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ॥

आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवादनम् ।
मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः ॥

मदर्थेष्वंग चेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम् ।
मय्यर्पणं च मनसः सर्वकाम विवर्जनम् ॥

मदर्थेऽर्थं परित्यागो भोगस्य च सुखस्य च ।
मज्जन्मकर्म कथनं मम पर्वानुमोदनम् ॥

गीत ताण्डव वादित्रगोष्ठीभिर्मद्गृहोत्सवः ।
यात्रा बलि विधानं च सर्ववार्षिकपर्वसु ॥
वैदिकी तान्त्रिकी दीक्षा मदीयव्रतधारणम् ।
एवं धर्मैर्मनुष्याणां उद्धवात्मनिवेदिनाम् ॥
मयि संजायते भक्तिः कोऽन्योर्थोऽस्यावशिष्यते ॥

अर्थात् गुरु, वैष्णव, महात्मा तथा भक्तिशास्त्र में वर्णित मरते को जीवन उल्लास देने वाली मेरी कथा सुधा में श्रद्धा श्रवण भक्तिका अङ्ग है। मनसा वाचा, कर्मणा मेरे नाम, रूप तथा चरित्रों का गुण गान करना कीर्तन भक्ति का अङ्ग है। मेरी पूजा में सर्वतोभावेन निष्ठा पूजन भक्ति का स्वरूप है। मेरी स्तुति करना, स्तोत्र पाठ करना आदि कीर्तन भक्ति का अंग है। मेरी सेवा में अर्थात् मंदिर झाड़ने लीपने आदि में आदर भाव दास्य भक्ति का अंग है। मंत्रोच्चारण पूर्वक ध्यान करते दण्डवत प्रणामादि वन्दन भक्ति का अंग है।

मेरी अपेक्षा भी अधिक भाव पूर्वक मेरे भक्त की पूजा तथा उन सबमें मेरी भावना रख के उनका भला करना अथवा पूजा करना पूजन भक्ति का अङ्ग है। हाथ पाव आदि की चेष्टा द्वारा सेवा भाव रूपी क्रियाएं सेवा भक्ति का अङ्ग है। जो कुछ कहना उसमें मेरे ही गुणोंका कथन करना, दूसरोंके गुण न कहना, अथवा उनमें मेरा आरोप करके गुण कथन करना, कीर्तन गुण का अंग है। मुझ में मन लगाना सेवा भक्ति का स्वरूप है। स्त्री, पुत्र, धन, देह, स्वर्ग शत्रु, मित्र आदि का संग्रह मेरे उत्सव के लिये प्राप्त करना और आवश्यकता पड़ने पर मेरे लिये इनका परित्याग सख्य भक्ति का स्वरूप समझा जावे, मेरे जन्म तथा आचरण की कथा कहना, पर्व के दिन उत्सव मनाना, गाना बजाना नाचना

मंदिर में एकत्रित होना, दल बांध के निकलना आदि सख्य भक्ति का अंग है। वर्ष भर पर्व के दिन उत्सव मनाना दीक्षा लेना व्रत धारण करना आदि आत्मनिवेदन भक्ति का स्वरूप है।

यों नवधा भक्ति के साधारण स्वरूपों का वर्णन करके प्रत्येक अंग के माहात्म्य का उल्लेख प्रारम्भ किया जाता है। ईश्वर के कथनीय जो विविध चरित्र हैं:-जैसे भक्तों पर वात्सल्य, संसार की सृष्टि पालन प्रलय आदि की आश्रयभूत सुनने योग्य कथा भगवत पार्षद् होने की श्रद्धा रखने वाले को सुननी चाहिये। पुण्य श्रवण भगवान् कृष्ण अपनी कथा सुनने वालों के अन्तर में प्रवेश करके हृदय से अभद्र भावों को निकाल भगाते हैं। जैसे शरद् ऋतु में ह्रद का जल स्वच्छ हो जाता है उसी प्रकार कथा सुनने वालों के कर्णरन्ध्र द्वारा हृदय में प्रवेश पाके भगवान् चित्त की मलिनता को धो डालते हैं। दूसरे देवताओं की उपासना वा विद्योपार्जन आदि द्वारा वह शुद्धि और श्रद्धा नहीं होती जो भगवद्गुण श्रवण द्वारा होती है।

दुष्ट जनों की बात छोड़ो। जबलों भगवान् की कथा में प्रीति नहीं होती तबलों जितेन्द्रिय यती लोगों का भी वृत्ति निरोध सिद्धि के काल पर्यन्त ही रहता है। अतः विवेकी जनों को हरिकथा श्रवण में प्रीति होनी चाहिये। पृथु ने भगवद्गुण श्रवण का माहात्म्य यों कहा है:-

स उत्तमश्लोक महन्मुखच्युतो,
भवत्पदाम्भोज सुधा कणानिलः ।
स्मृतिं पुनर्विस्मृत तत्त्ववर्त्मनां,
कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः ॥

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचित,
न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो,
विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ॥

अर्थात् हे उत्तमश्लोक ! आपके चरण कमल सुधा से निकले वायु का कण भटके हुए कुयोगियों को फिर ब्रह्म स्मृति दिला के ठिकाने लगा देता है। हे नाथ ! कैवल्य सुखान्वेषी मुमुक्षुओं की गति हमें न चाहिये यदि उसमें आपकी कथा सुधा पान का सुभीता न हो। हमें तो यही वर दीजिये कि हमारे कान अधिकाधिक आपकी कथा सुधा का श्रवण कर सकें।

यों श्रवण भक्ति, का माहात्म्य गाकर कीर्तन भक्ति का यश वर्णन करते हैं।

कलेर्दोषनिधेः राजन्नस्तिह्येको महान्गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत् ॥
कलियुग सम युग आन नहिं जो नर कर विश्वास ।
गाइ राम गुन गन विमल भव तर विनहिं प्रयास ॥
कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥
कृतयुग सब योगी विज्ञानी ।
करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी ॥
त्रेता विविध यज्ञ नर करहीं ।
हरिहि समर्पि करम भव तरहीं ॥
द्वापर करि रघुपति पद पूजा ।
नर भव तरहिं उपाय न दूजा ॥
कलियुग केवल हरिगुण गाहा ।
गावत नर पावहिं भव थाहा ॥
सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।
वैकुण्ठ-नाम ग्रहणं अशेषाघ हरं विदुः ॥

भाव कुभाव अनख आलस हूं ।
नाम कहत मंगल दिशि दश हूं ॥

देखिये मरणासन्न अजामिल ने पुत्र को सम्बोधन कर जो नारायण का नाम लिया सो वो मुक्ति पा ही गया । फिर श्रद्धा पूर्वक भगवद्गुण गान करने वालों का तो पूछना ही क्या है ? भगवान् शुकदेव ने भी कहा है ।

नातः परं कर्म निबन्धकृन्तनम्,
मुमुक्षुतां तीर्थपदानुकीर्तनात् ।
न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो,
रजस्तमोभ्यां कलिलं न चान्यथा ॥

अर्थात् कर्म भोग काटने के लिये भगद्गुण कीर्तन से बढ़ कर और श्रेष्ठ कोई उपाय नहीं है । क्योंकि कीर्तन में आने वाले आनन्द के आगे फिर और कर्मों में मन ही नहीं लगता । बड़े २ ऋषि मुनि इसी में लगे रहते हैं:-

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद् भवौषधाच्छ्रोत्रमनोभिरामात् ।
क उत्तम श्लोकगुणवादात पुमान्विरज्येत् विना पशुघ्नात्॥

अर्थात् तृष्णा से मुक्त ऋषिगण भी जिस कर्णमनोहर भवनाशक भगवन्नामकीर्तन का आश्रय लेते हैं उसका आश्रय आत्मघाती को छोड़ और कौन न लेगा ? भागवत के द्वादश स्कन्ध में कहते हैं:-

मृषा गिरस्ताह्यसती रसत्कथा न कथ्यते यद्भगवानधोक्षजः।
तदेव सत्यं तदुहैव मंगलं तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥
तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ।
तदेव शोकार्णव शोषणं नृणां यदुत्तमश्लोकयशोनुगीयते ॥

अर्थात् परम सत्य मंगलदाता भगद्गुण कीर्तन के अतिरिक्त और सब वार्तालाप व्यर्थ हैं । भगवद्गुण कीर्तन कमनीय, मन को आनन्ददाता, संसार के शोक समुद्र को सोखने वाला है इसी कारण उत्तम कीर्त्ति भगवान् के गुण गान ही से जीवन सफल समझा जाना चाहिये ।

कृष्ण

[ले० श्री० गंगाविष्णु पाँडेय विद्याभूषण 'विष्णु']

(१)

तूने ही भारत-युद्ध-क्षेत्र में सबल शत्रु-संहार किया,
तूने ही देवों की सुन कर दैत्यों पर चक्र-प्रहार किया ।
तूने ही लोक-द्वेषियों पर तलवार वार बहुबार किया,
तूने ही माया-प्रपंच से सब जग का कारोबार किया ॥

(२)

तूने ही मृतक, रोगियों में निज-शक्ति-बीज-संचार किया,
तूने ही रंकों को राजा आदर्श सुदामा यार किया ।
तूने ही जो भजते तुझको हैं उन्हें गले का हार किया ।
तूने ही हरदम रक्षा की पृथ्वी का हलका भार किया ।

(३)

तूने ही सब-खल-दल-बल का चौपट बंटाधार किया,
तूने ही भक्तों के यश का संसृतिमें पूर्ण-प्रसार किया ।
तूने ही पूरा किया उसे जो एकबार इकरार किया,
तूने ही गीता गा करके भारत-भू का उद्धार किया ।

(४)

तूने ही वर्णाश्रम पथ से सम्यक संसार सुधार किया,
तूने ही सत्य सनातन वैदिक धर्म मार्ग-विस्तार किया ।
तूने ही वेद-पुराणों का स्मृतियों का बेड़ा पार किया,
तूने ही "विष्णु" रूप होकर नरतन, धरना स्वीकार किया।

महात्मा सच्चिदानंद का उपदेश

अंक ११ वां पृष्ठ ४१० से आगे

[ले० भक्त शिरोमणि श्रीमथुराप्रसाद जी]

अब कहो सुखराम दास ! तुम्हारी शंका का समाधान हुआ या नहीं ?

सुखराम:-श्री महाराज आपकी जय हो आपने गीता जी के ६६ वें श्लोक का ऐसा स्पष्ट अर्थ वर्णन कर दिया कि मेरे चित्त को पूरा समाधान हो गया। अब इसी शरणागति विषय में जो और कोई अंश रह गया वह भी आज्ञा कर दीजिये।

महात्मा:-प्रिय शिष्य ! शरणागति के छै अंग हैं। जिनमें से एक के अभाव में भी अंग हीन शरणागति निरर्थक होजाती है। वह षट् अंग यह हैं।

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्व वर्णन तथा।
आत्मनिक्षेप कार्पण्यं षड्विधा शरणागतिः।

प्रथम अंग शरणागति का आनुकूल्य संकल्प है। अर्थात् श्री भगवान ने जो कुछ कर्तव्य प्राणी को उपदेश किया है सदाचार आदि धर्म उन भगवान् के अभिमत धर्मों के अनुकूल वर्ताव का रहना उसके विपरीत कभी संकल्प तक चित्त में न आना और भगवान् के उपदिष्ट धर्म से प्रतिकूल न चलना यही दूसरा अंग है।

सत्य, क्षमा, दया, लोभत्याग ब्रह्मचर्यपालन इत्यादि भगवन् अनुकूल धर्मों का आचरण और उनके विपरीत आचरण न करना यह दो अंग हुवे।

तीसरा अंग (रक्षिष्यतीति विश्वासः) है अर्थात् दृढ़ भरोसा रखना कि प्रभु हमारी रक्षा अवश्य करें हीगे। जैसे बालक को माता पिता का, स्त्री को पति का और पति को अपनी धर्म पत्नी का दृढ विश्वास रहता है उसी प्रकार शरण में आये हुवे प्राणी को श्री भगवन् चरणारविन्द का बहुत पक्का विश्वास होना चाहिये। इसमें एक दृष्टान्त इस प्रकार है:-

एक पतिव्रता स्त्री का पति चिरकालमें विदेश से आया। सफर में कई दिन उसे जागना पड़ा, इस कारण उसने घर आते ही स्त्री से कहा कि मुझे नींद बहुत सतारही है जल्दी मेरे सो जाने का उपाय कर स्त्री पतिव्रता थी ही उसने बहुत शीघ्र भोजनादि प्रबंध कर पति परमेश्वर को भोजन करा बिछौना तयार कर दिया। आप बैठ कर पंखा करने लगी, पति का मस्तक अपनी जंघा पर रख उसे सुला दिया। वह कई रात का जागा था। गाढ़ निन्द्रा में अचेत हो सोगया। दोपहर दिन शेष था उस समय से सोते जब रात का एक पहर बीत गया तब एक काला

भुजंग जिह्वा निकाले फन ऊंचा किये समीप आता दिखाई दिया। स्त्री ने उसकी ओर देख कर कहा देवता तुम कौन हो! किस लिये मेरे पति भगवान् की तरफ चले आरहे हो? नाग बोला इस शरीर ने मुझे बहुत दुःख दिये हैं। मैं बदला लेने आया हूं। इसका एक छटांक रुधिर पाऊंगा तब मेरी तृप्ति होगा। स्त्री बोली देव! तुम इतनी कृपा करो मेरे पति को कष्ट न दो, मेरा रुधिर चाहे जितना पीलो। नाग बोला ऐसा नहीं हो सकता मैं इसीके तो रुधिर का प्यासा हूं आज अच्छा अवसर हाथ आया यह अचेत सोरहा है। तू दूर हटजा। स्त्री ने कहा देव! ऐसा नहीं हो सकता कि मेरे जीते जी तुम मेरे पति का प्राण ले सको, हां इतना हो सकता है कि तुमको इनके शरीर का रुधिर मैं निकाल कर देदूं। यदि तुम फिर भी हठ करोगे तो मैं पतिव्रता हूं तुम्हें अपने तेज से भस्म कर देने की सामर्थ्य रखती हूं। नाग यह वचन सुन कर उसके तप से डर गया और बोला अच्छा तुम्हारा कहना मानता हूं स्त्री चुप चाप उठी एक चाकू और कटोरा लाई और पति के शरीर से धीरे धीरे खून निकालना आरंभ किया। पतिदेव ने एकबार आंख खोल कर देखा परन्तु बहुत निद्रासक्त था और अपनी स्त्री को पास बैठा देख उसे विश्वास आगया कि मेरी रक्षा करने वाली मौजूद है कोई बिगाड़ नहीं हो सकता। सोच कर फिर निश्चिन्त होकर सोगया। जो पीड़ा उसे रक्त निकलाने से हुई थी उसका कारण तक न पूछा क्योंकि निद्राभंग एक क्षण को भी उसे अभीष्ट न थी, पूरा भरोसा था कि स्त्री रक्षक पास बैठी हुई है, व्यर्थ बात कर के समय क्यों खोऊं। निदान वह सोगया और नाग उसके खून को पीकर चला गया।

इस दृष्टान्त से प्रयोजन यह निकलता है कि उस पुरुष के शरीर में वेदना भी हुई और इतना रुधिर भी निकाला गया तो भी केवल रक्षा करने वाली स्त्री के भरोसे पर उसने कुछ परवाह न की। ऐसे ही जीव को पूरा विश्वास प्रभु पर होना चाहिये। कर्म फल भोग अवस्था में चाहे कितना भी कष्ट सहना पड़े यह विश्वास दृढ बना रहे कि प्रभु अवश्य रक्षा कर रहे हैं और करेंगे भी।

चौथा अंग गोप्तृत्व वर्णन है अर्थात् प्रभु ने जिन आर्त भक्तों की रक्षा समय २ पर की है उसका वर्णन इससे प्रत्यक्ष लाभ तो स्फुट ही है कि विश्वास में दृढता बढती है।

पांचवां अंग शरणागति का आत्मनिक्षेप है। इसको आत्मनिवेदन कहते हैं जो नवधा भक्ति में सब से पीछे नवें नम्बर पर गिनाया है। आत्मा को प्रभु के अर्पण (भेट) कर देना।

मदार्प्यते त्वच्चरणेऽयमात्मा ।
प्रतीच्छ हे स्वस्य धनं स्वयं त्वम् ॥
किञ्चित् निज स्वं नहि विद्यते मे ।
वहीयते त्वच्चरणे मुकुंद ॥

हे मुकुन्द! (मुक्ति दाता) मेरी कोई वस्तु संसार में नहीं जो आपकी भेट करूं। केवल आत्मा मेरा है वोही आपकी भेट है इसे अंगीकार कीजिये। जब आत्मा प्रभु की भेट हो चुकी तो आत्म संबन्धी कोई पदार्थ अपना नहीं रहा! चाहे देह के नाते सम्बन्धि सब नष्ट होजाओ; धन दौलत, राज पाट, मान, बड़ाई, कुछ न रहो; शरणागत जीव को कुछ परवाह नहीं। यदि चिन्ता और शोक का लेश मात्र भी विचार हो जाय तो शरणागति धर्म उसी क्षण में जाता रहता है क्योंकि आत्मा तथा तत्सम्बन्धि

वस्तु अपनी कुछ रही ही नहीं प्रभु की होचुकी अब उनमें अहन्ता या ममता करने का कोई अवकाश ही नहीं। यदि ऐसा करे तो झूठा पाखंडी किंच पातकी समझा जावेगा। जब जीवात्मा अनन्य भाव से प्रभु की शरण में आकर उन्हीं के चिन्तवन में तत्पर हो जाता है तो प्रभु को उसके भरण पोषण की चिन्ता होती है। गीता में श्री प्रभु का वचन है:-

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

अर्थात् जो लोग अनन्य भाव से मेरे ही चिन्तन में लीन हो जाते हैं उनको योग और क्षेम मैं प्राप्त करता हूं। अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति योग और प्राप्त वस्तु की रक्षा का नाम क्षेम है। शरणागति के सब अंगों में मुख्य और कठिनआत्मनिवेदन ही है।

छठा अंग शरणागति का कार्पण्य है। कार्पण्य नाम दीनता का है। जब जीवात्मा को अपने भरण पोषण की चिन्ता नहीं और उसकी रक्षा तथा सद्गति का भार प्रभु ने अपने ऊपर लेलिया तो निश्चिन्त होकर उसके उद्धत होजाने का भय है। इस अनर्थ के निरोधार्थ दीनभाव की आवश्यकता है। महात्मा सूरदासजी तथा तुलसीदासजी आदिने उतनी बड़ी पदवी पर पहुंच कर भी किस दरजे की दीनता प्रकट की है। उनके रचित पदों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि अपने को महा अधम पातकी और प्रभु को पतित पावन करुणामय आदि शब्दों से बारम्बार पुकारा है। देखिये तुलसीदास जी महाराज विनय पत्रिका में क्या वर्णन कर रहे हैं:-

तू दयाल दीन हौं तू दानी हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पापपुंज हारी॥

बस इसीका नाम कार्पण्य है। अनेक जन्म के महापातक इसी प्रकार कृपणता के द्वारा निवृत्त होजाते हैं। यह छै अंग शरणागति के जाने बिना और इनके अनुसार वर्ताव किये बिना मनुष्य हरि शरण नहीं कहला सकता।

अपूर्ण

एक देवी द्वारा सेठजी को ज्ञान।

रहता था एक नगर में, कोई सेठ धनवान।
संसारिक व्यवहार में, था अति चतुर सुजान॥
संसारिक व्यवहारिक कामों में, बुद्धि थी अत्यन्त प्रबल।
था धन उसके घर में इतना, जितना अथाह सागर में जल॥
सुत धन दारादिक सारी, सामग्री में था वह सेठ कुशल।
तो भी अशान्ति थी चित में, वानर की तरह था मन चंचल॥
ऐसा था वह सेठ, मोह में फंसा हुआ पर।
पूर्व पुण्य बल से, प्रकाशमय था उसका घर॥
सुत दारा तो, दोनों थे उसके अज्ञानी।
किन्तु सुत वधु थी, पतिव्रता सती सयानी॥

एक पुत्र वधु उसके घर में, विदुषी थी और सब गुण खानी।
आत्मा में अपने स्थित थी, और योगिनी भी थी और थी ज्ञानी।
वह विविध प्रकार युक्तियों से, दृष्टान्त सुनाया करती थी॥
कल्याण कारिणी वाणी में सब को समझाया करती थी॥
निज पति पे और निज सास पर उसने प्रभाव अपना डाला।
पर नहीं श्वसुर के हृदय में, कुछ हुआ ज्ञान का उजियाला॥
वह माया रूपी मदिरा को पीकर उन्मत्त रहा करता।
घर को धन को देख देख कर, हरदम मस्त रहा करता॥
जिसने मन रूपी दर्पण में, लक्ष्मी का बिम्ब उतारा हो।
ऐसे अज्ञानी प्राणी का उपदेश से क्या निस्तारा हो॥

एक दिवस की बात है सुनिये चित्त लगाय।
पुत्र वधु निज भवन में भोजन रही बनाय॥

छत्तीस प्रकार के व्यञ्जन थे उसकी रसोई में धरे हुवे।
और शुद्ध स्वच्छ सब पात्रों में सारे भोजन थे भरे हुवे॥
वह शीलवती सुन्दर नारी श्रद्धा से भोजन बना रही।
और थाल थालियों में उत्तम व्यञ्जन रख कर सजा रही॥
उस समय सेठ के मन्दिर में, आये एक बाल ब्रह्मचारी।
और क्षुधा निवृत्ति के कारण, आकर बोले जय कृष्ण हरी॥
यह शब्द सुना नारी ने, तब दृष्टि साधु पर डाली॥
उसकी नूरानी सूरत पर, देखी ऐक तेजमयी लाली॥
उस योगिराज के चेहरे पर, कुछ अजब प्रकाश झलकता था।
उसका सुर्खीमायल चेहरा, सूरज की तरह दमकता था॥
वह देवी भी थी बड़ी चतुर, उस साधु को पहचान गई।
यह महात्मा कोई ज्ञानी है, बस इतना मन में जान गई॥
जौहरी के सम्मुख आकर के, नहिं लाल छिपाये छिपता है।
परखनेवाले के हाथों में आकरके, फिर धनका मोल निरखता है

योगीराज कोप्रथम तो, झुक कर किया प्रणाम।
पुनः इस तरह पर लगी, कहने सुन्दर बाम॥
अहो किस लिये की कृपा हम पर हे मुनिराज!
और फिर इतने जल्दी कैसे पहुंचे आज॥

नीची नजरों से मुसकरा कर यों मुनिराज ने फरमाया।
भोजन की इच्छा से माता यह देह यहां चल कर आया ॥
और शीघ्र यहां आने का हम तुमको क्या कारण बतलावें ?
इस काल की अद्भुत गति देखो देवता न इसका थाह पावें ॥
सारा संसार असार है यह क्षण में कुछ है क्षण में कुछ है।
एक बाजीगर का खेल सा है क्षण में कुछ है क्षण मे कुछ है ॥
इसलिए जगत में हे माता ! एक पल का नहीं भरोसा है।
जो कुछ करना है आज ही कर यह कौन कहे कल को क्या है ॥
योगीराज की वार्ता सुन कर अति गम्भीर।
शुद्ध स्वरूपा नारि के बहा नयन से नीर ॥
वह उन साधू से फिर बोली यह आप सत्य फरमाते हैं।
ऋषिराज किन्तु इस घर में तो सब बासी टुकड़ा खाते हैं ॥
और यही फिक्र नित रहती है देखिये यह कब तक खायेंगे।
ये जमा किये कल के टुकड़े कबतलक काम में आयेंगे ॥
सुन कर नारी के वचन, ऋषि हुए बेताब।
प्रत्युत्तर में इस तरह कहने लगे शिताब ॥
हे माता ! तेरी उमर है क्या और पति तेरा के साल का है ?
और सास श्वसुर की भी बतलादे तू आयु क्या है ?
तेरी बातों के सुनने से मेरे मन को अति कष्ट हुआ।
अब भोजन नहीं करूंगा मैं बातों से ही सन्तुष्ट हुआ ॥
मृगनयनी इस वचन पर यों बोली तत्काल।
मुनिराज मेरी उमर है अब बारह साल ॥
है पति की मेरे सात साल और सास को चौथा साल लगा।
पर नहीं ऋषि जी इस जगमें अभी श्वसुर का मेरे जन्म हुआ ॥
यह सुनते ही नारी के वचन चल दिये ब्रह्मचारी फौरन।
वह देवी भी फिर उसी तरह भोजन के कार्य में हुई मगन ॥
श्रोतागण अब कीजिये श्रवण बाद का हाल।
सेठ भी घर पर आगये गले दुपट्टा डाल ॥
द्वार के बाहर रोक कर अपनी नित की चाल।
उन्होंने कानों से सुना आने वह अहवाल ॥

इन बातों के सुनते सुनते सीने में क्रोध उभर आया ।
दोनों आंखों में लाला की फौरन ही खून उतर आया ॥
विकराल हुई सूरत उनकी और लाल लाल दोनों आंखें ।
जैसे शिकार पर होती हैं नाहर की अति कराल आंखें ॥
पुत्र वधु से सेठ जी यों बोले तत्काल ।
तेरी बातों से हुआ मुझ को बहुत मलाल ॥
ऐ दुष्टा ऐ कुटिला नारी क्यों झूठ वृथा तूने बोला ।
कब बासी भोजन किया बता अमृत में विष कैसे घोला !
जो मेरा जन्म ही नहीं हुआ तब तू यहां तक कैसे आई ॥
और चार साल की सास तेरी अहो यह तेरी कुटिलाई ॥
तू पुत्र से मेरे बड़ी हुई यह झूठ कहा किस लिये बता ?
यह वज्र समान तेरी बातें सुन कर मेरा फट गया हिया ॥
मैं सत्तर वर्ष का पैदा हूं जो तूने कहा पैदा न हुआ ।
पचास साल की सास तेरी तू कहे चौथा साल लगा ॥
तू पति से अपने बड़ी हुई जो सात वर्ष का बतलाया ।
और अपनी आयु बारह साल क्या नशा कोई तू ने खाया ॥
पुत्र वधु निज श्वसुर से यों बोली कर जोर ।
पिता शान्त कर चित्त को देखो मेरी ओर ॥
हे पिता जी ! मेरी बातों मे गर झूठ का लेशमात्र भी हो ।
तो खड्ग से मेरी जिह्वा को बरके गर्दन का कटवादो ॥
स्थान तलक उस साधु के हे पिता ! आप कृपा कीजे ।
साधु से अर्थ इन बातों का सुन कर सन्देह मिटा लीजे ॥
पुत्र वधु को सेठ जी लेकर अपने साथ ।
योगीराज के सामने आय नवाया माथ ॥
साधु भी अन्तर्यामी थे सब समझ गये शंका मनकी ।
ऐसे ही सच्चे यति सती शंका हरते हैं दुर्जन की ॥
जो नाहर को भी युक्ति से सीधे रस्ते पर ले आवें ।
जो दुर्जन को भी प्रीति से अपने सतमार्ग पर लावें ॥
ऐसे महात्मा अगर मिलें तो भाग्य उदय हो जाता है ।
इस पारस पथरी से मिल कर लोहा कञ्चन बन जाता है ॥
वही ऋषि वोही मुनी वही हैं सच्चे साध ।
जो क्षण भर मे भक्त के हरें कोटि अपराध ॥
सेठ न करने पाये थे अपना कोई सवाल ।
ऋषिराज देने लगे यों उत्तर तत्काल ॥
सुनो सेठ जी चित्त को करके अपने शान्त ।
मेरी और इस युवति की बातों का वृत्तान्त ॥

इसने हम से यों पूछा था तुम इतनी जल्दी क्यों आये ?
था तात्पर्य इस बात का यह क्यों जल्दी कपड़े रंगवाये ॥
यह सवाल इसने हम से किया है अभी तुम्हारा बालकपन ।
फिर ऐसी बाल अवस्था में साधु बनने का क्या कारण ?
तब इसको उत्तर हमने दिया है काल की अद्भुत गति माता !
जो समय हाथ से निकल गया वह नहीं किसी सूरत आता ॥
इसलिये जगत में हे माता ! जो करना हो सो आज ही कर ।
क्या बाल अवस्था युवा जरा इन बातों पर कुछ ध्यान न धर ॥
और इसने कहा इस घर में तो सब बासी टुकड़े खाते हैं ।
मतलब यह था सब पिछले शुभ कर्मों के फल पाते हैं ॥
सब पूर्व जन्म का दिया किया इस जन्म में प्राणी पाता है ।
जो आगे को नहीं करता है वह फिर पीछे पछताता है ॥
और इसने उमर बतलाई वह भी हम तुम्हें सुनते हैं ।
जिसमे तुमको शंका आयी वह सब सन्देह मिटाते हैं ॥
यह बाहर वर्ष से लगा हुई है नियम धर्म अरु आतम में ।
और चार साल से सास का मन है लगा हुआ परमातम में
और सात वर्ष से ही इसके स्वामी को आतम ज्ञान हुआ ।
पर एक तू ही सारे घर में ऐ मूरख ! शिला समान हुआ ॥
तेरा है ज्ञान से शून्य हृदय इसलिये नहीं जन्मा है तू ।
जिस समय से जिसको ज्ञान हुआ उतनी ही है उसकी आयु ॥
सुन कर साधु के वचन हुआ सेठ को ज्ञान ।
उत्तर में कहने लगा सुनिये कृपा निधान ?
हे नाथ ! जिस तरह रोगी का सब रोग दवा से जाता है ।
जिस तरह सूरज की किरणों से सब अन्धकार मिट जाता है ॥
जिस तरह से दीपक का प्रकाश घर को रोशन कर देता है ।
जिस तरह भाग्य वाला कोई धन से घर को भर देता है ॥
इस तरह आपके वचनों से भगवान् मेरा कल्याण हुआ ।
सब काम क्रोध मद लोभ छुटे और मुझको आतम ज्ञान हुआ ।
अब मैं इन सब विभूतियों को सच्चे मन से धिक्कारता हूं ।
अब उदय अस्त के राज को भी घृणा से ठोकर मारता हूं ॥
अब मेरा बेड़ा पार हुआ भगवन् ! इन चरणों को छूकर ।
क्या खबर थी कैसी गति होती मैं बनता शूकर वा कूकर ॥
काषाय वस्त्र अब स्वामी जी ! मुझ को भी शीघ्र पहिना दीजे ।
जो रंग है तुम पर चढ़ा हुआ मुझ पर भी वही चढ़ा दीजे ॥
योगीराज महाराज ने दिये वस्त्र काषाय ।
रहे सेठ मुनिराज संग वन में अति हर्षाय ॥

भजन

दिल ले गया मुरारी साडा हंस हंस के ।।टेक।।
करके खेल निराले सानूं डाडे जादू डाले ।
हुन क्यों तीर विछोड़े वाले मारे कस कस के ।।दिल०
साडे नाल जो कीती शामा वही है अनोखी ।
लाके किथों दी यह रीति जाना नस नसके ।। दिल०
तैनूं जिदां सदों पइयां , सबें रलके सभी सैयां ।
चंदा किवें मनोहरियां रहियां पैर मस मस के ।।दिल०
मोहना वृत विच आजा वंशी मधुर वजाजा ।
साडे ठंढ कलेजा पाजा मुखड़ा दस दस के ।। दिल०
तूनां द्वारका जा मिलजा कोई चिट्ठी वी नावरजी ।
रोंदा राधा होगई कमली कमली दस दस के ।। दिल०
लगी तांग मुकन्दा आजा नन्द के नन्दा ।
साडे भादा न पा धन्धा मन खस खसके ।।

दोहा—जैसे लकड़ी डाक की ऐसा यह तन देख ।
वामें केशू छुप रहा या में पुरुष अलेख ॥
बंगला भला बना दरवेश, जामें नारायण प्रवेश ।।टेक
पांच तत्त्व की ईंट बनाई तीन गुणों का गारा ।
छत्तीसों की छात बनाकर चिन गया चिनने हारा ॥
इस बंगले के दश दरवाजे पांच पवन का खंभा ।
आवत जावत कोऊ न जाने देखो बड़ा अचम्भा ।.बं०
इस बंगले मे चौपड़ मांडी खेलें पांच पचीस ।
कोई तो बाजी हार चला है कोई चला जुग जीत ॥
इस बंगले में पातर नाचै मनुवा ताल लगावे ।
सुरत नरत के पहर घूंघरू राग छत्तीसों गावे । बंग०
कहैं मछन्दर सुनवाले गोरख जिन यह बंगला गाया ।
इस बंगलेके गाने वाला बहुर जन्म नहीं आया ।बंग०

सहायक

राव साहब चौ० हेतराम जी मु० दौलालपुर जि० हिसार	१२)
चौ० हुकमसिंह जी निखरी	११)
बा० वैकुण्ठनाथ जी दिल्ली	११)
पं० जगन्नाथ जी रेवाड़ी	११)
ला० अमीचन्द नरसिंहदास भिवानी	११)
चौ०गणपतसिंह जी यादव पटीकड़ा परगना नारनौल	११)
चौ० मनोहरसिंह जी „ पाल्हावास, रेवाड़ी	११)
ला० छोटेलाल घासीराम जी आयरन मर्चेण्ट चावड़ीबाजार, दिल्ली	११)
ला० सरदारीलाल जी क्लाथ मार्केट दिल्ली	११)
राव घीसाराम जी गढ़ीबोलनी	१०)
चौ० इन्द्रसिंह जी सिरहोल	७)
बा० शिवरामसिंह जी „	५)
माई गुलाबोदेवी दिल्ली	५)
भक्त बनारसीदास जी दिल्ली	५)
महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी ।	५)

श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौ० जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ़।	५)
श्रीमान् पं० जयराम जी शर्मा 'सनातन' इलाहबाद बैंक देहली।	५)
मि० एल. के. मिसरा इंस्पेक्टर, पोस्ट आफिस जयपुर	५)
राय बहादुर लेखनारायण सिंह जी बाढ, पटना	५)
डाक्टर कवलकिशोर सिंह जी कलकत्ता	५)
राय साहब बांकेविहारीलाल जी बी० ए० तहसीलदार चिड़ावा	५)
सेठ मेलाराम जी अग्रवाल भिवानी	५)
जमादार दीपचन्द जी ,,	५)
ला० ओंकारमल जी कानपर	५)
चौ० दौलतराम जी पटवारी नाहरी, सूबा दिल्ली	५)
भक्त हरीचन्द जी प्रेमहाउस, ,,	,,
पं० मथुराप्रसाद ग्राम जमालपुर पो० कासन, गुड़गावां	५)
श्री० दिलीपसिंह जी, कैथल मंडी, करनाल	५)
चौ० मूलचन्दजी गुरावड़ा जि० गुड़गावां	७)
बा० जगन्नाथ यादव सदर बाजार लखनऊ	५)
सुमित्रादेवी ठिकाना ला० प्रेमशंकरजी प.न का दरीबा जैपुर	५)
ला० न्यादरमल जी दिल्ली	,,
ला० रामेश्वर जी गुप्ता ,,	,,
ला० प्रभुदयाल जी [illegible]	,,
त्रिवेणीदेवी धर्मपत्नी ला० रामकरणदास खरक, रोहतक	५)
ला० श्रीराम जी गुप्ता बठिण्डा	५)
बा० जयदयाल भार्गव भोड़ाकलां	५)
राय सा० ला० सेवकराम एम. एल. सी. लाहोर	५)
पं० नानकचन्द एम. एल सी. लाहोर	५)
श्री धानी चन्द लाहोर	५)
श्रीमती सरस्वती देवी भगवद्भक्ती आश्रम रेवाड़ी	५)

मुद्रक तथा प्रकाशक भूपानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम, रेवाड़ी।

REGD. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१. भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहित	मूल्य	॥=)
२. भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	"	।−)
३. वेदोपनिषत्	"	।−)
४. अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	"	−)।
५. ज्ञानधर्मोपदेश	"	−)।॥
६. भक्ति योग संग्रह	"	=)॥
७. शब्द सदाचार संग्रह	"	−)।
८. सत्य शब्द संग्रह	"	।≡)
९. शब्दसंग्रह	"	−)॥
१०. सारसंग्रह	"	≡)
११. भाषा फक्किका प्रकाश	"	।)

मिलने का पताः—

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

केवल टाइटिल पेज महारथी प्रेस, दिल्ली में छपा।